विप्लव पुस्तक माला—३८

जग का मुजरा

वैयक्तिक और पारिवारिक प्रश्नों पर
सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि

यशपाल

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग,
लखनऊ

जून १९६२

मूल्य तीन रुपया

२०८
कहानी

६०८४
५-३-६८

समर्पण

समझ झरोखे बैठके
जग का मुजरा देख।
कथनी, करनी तोल के
मन का मोहरा टेक।

यशपाल

प्रसंग

भूमिका

इन कथा-चित्रों में चर्चा का विषय वही कठिनाइयाँ हैं, जिनका हम ने समय-समय पर सुव्यवस्था और विकास के प्रयोजन से स्वयं निर्माण किया है। आज उनके बोझ से असमर्थता और असुविधा अनुभव हो रही है।

यथार्थ की दृष्टि से मनुष्य द्वारा स्वयं निर्मित कठिनाइयों का विश्लेषण, समाज के लिये रोचक और उपादेय भी होना चाहिये।

आशा है, प्रस्तुत सामाजिक चित्र और व्यंग की शैली पाठकों को सार्थक जान पड़ेगी।

महानगर, लखनऊ
जून, १९६२

यशपाल

[illegible]. [illegible]. [illegible]. श्री कानूनी आदि आदि । एक प्रकार
[illegible] कोई धन्धा नहीं और नाम भी नहीं ।

×

[illegible] के पड़ोसी लाला का नवयुवक पुत्र एक ओहदे के लिये कम्पीटीशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर भी सेलेक्शन में सफल नहीं हुआ । लाला निराशा से खिन्न थे । उनके भाग्य को, व्यवस्था में धांधली को और पक्षपात को कोस रहे थे । लाला के मन की अशान्ति किसी प्रकार दूर नहीं हो रही थी; नींद और भूख दोनों जाती रही ।

श्री सर्वोदय ने लाला को सहानुभूति से समझाया—"भैया, बुरा न मानना, चिंता और क्षोभ का कारण तो तुम्हारे मन में है । तुम्हें चिंता यह नहीं है कि तुम्हारे पुत्र को कर्म और सेवा का अवसर नहीं मिल सकता । जो सेवा और कर्म करना चाहता है, उसे कोई बाधा नहीं हो सकती । तुम्हें क्षोभ इसलिये है कि पुत्र को फल पाने का, प्रतिष्ठा और धन पाने का अवसर नहीं मिल रहा है । यदि मन से फल के मोह को दूर कर सको तो मन में क्षोभ भी न हो। सांसारिक लोभ ही दुख का कारण है । लोभ की सीमा नहीं इसलिये दुख की भी सीमा नहीं ।"

लाला सर्वोदय जी की ज्ञान-गंभीर बात सुन कर आँख और मुंह फैला[illegible] रह गये । यथार्थ कुछ कहना चाहते थे परन्तु साम्य ने सर्वोदय से पू[illegible]—"महात्मा जी, सांसारिक लोभ से क्या अभिप्राय ? जीवन-रक्षा और [illegible] के प्रयत्न के फल की आशा को भी आप लोभ कह देंगे तो [illegible]

[illegible] दिये—"जीवन की रक्षा और निर्वाह के लिये [illegible]
[illegible] जी ने तर्जनी से आकाश की ओर संकेत [illegible]
[illegible] हाथ कपड़े से हो सकता है......"
[illegible] शरीर में प्राण बने रहना [illegible]
[illegible] चेतना और प्रयत्न से [illegible]
[illegible] मानव की [illegible]

पुरइन में पानी

श्री 'क्ष' का उपनाम 'यथार्थ' पड़ गया है। कारण यह नहीं कि उन के व्यवहार और दृष्टिकोण में पार्थिवता अथवा ठोस भौतिक प्रवृत्ति है, बात कुछ उल्टी है। 'क्ष' बात-बात मे यथार्थ की दुहाई अवश्य देते हैं परन्तु वे गुफ्तार के गाजी हैं यानी वाक्-वीर है। बातो मे ही वे सफलता पाते हैं।

सिद्धांत को जीवन मे निबाहता कौन है? सिद्धांत तो केवल वाणी से स्वीकार कर लिया जाता है और उस की दुहाई दी जाती है। जनता की वाणी की उपेक्षा करने वाली सरकार 'जनवादी' कहलाती है। धन-ऐश्वर्य और शक्ति के सचय को ही जीवन का लक्ष्य मानने वाले दरिद्रनारायण के पुजारी ईसा और गाधी के भक्त होने का दम भरते हैं। समाज की गर्दन पर सवार होकर, अपने अकुश से समाज के हाथी को मनचाही दिशा में चलाने वाले लोग 'समाजवादी' हो सकते हैं तो 'क्ष' बिना कभी कोई यथार्थ सिद्ध किये 'यथार्थवाद' का समर्थन क्यों नहीं कर सकते?

श्री यथार्थ का मकान नगर मे ऐसी जगह है कि आते-जाते राह मे पड़ जाता है। मकान मे भीतर, यथार्थ मे विशेष साधन न होते पर भी सामने खुला आंगन और चौड़ा बरामदा है। बैठकर बातचीत, विवाद के चकल्लस मे समय बिता सकने की सुविधा है इसलिये प्राय· अवकाश के समय उन के यहाँ बैठक जम जाती है। वहाँ सर्वोदयी, कलाकार और साहित्यिक आते हैं, साम्यवादी भी आ बैठते है। श्रीमती यथार्थ अंग्रेजी पढी हैं इसलिये उन्हे पुरुषो मे बैठ कर बात करने में संकोच नहीं होता। श्रीमती यथार्थ की उपस्थिति से उत्साहित होकर कभी-कभी पड़ोस से एक-आध आधुनिक महिला भी आ जाती हैं। इस बैठक मे लोगो के वास्तविक नामो का नही, यथार्थ के अनुकरण मे उन के गुणवाचक नामो का अथवा उपनामों का ही प्रयोग होता है। उदाहरणत.—

श्री सर्वोदय, श्री साम्य, श्री कलाधर, श्री कानूनी आदि आदि। एक प्रकार का क्लब समझिये जिस का कोई चन्दा नहीं और नाम भी नहीं।

× × ×

यथार्थ के पड़ोसी लाला का नवयुवक पुत्र एक ओहदे के लिये कम्पीटीशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर भी सेलेक्शन में सफल नहीं हुआ। लाला निराशा से खिन्न थे। अपने भाग्य को, व्यवस्था में धांधली को और पक्षपात को कोस रहे थे। लाला के मन की अशान्ति किसी प्रकार दूर नहीं हो रही थी; नींद और भूख दोनों जाती रहीं।

श्री सर्वोदय ने लाला को सहानुभूति से समझाया—"भैया, बुरा न मानना, चिंता और क्षोभ का कारण तो तुम्हारे मन में है। तुम्हें चिंता यह नहीं है कि तुम्हारे पुत्र को कर्म और सेवा का अवसर नहीं मिल सकता। जो सेवा और कर्म करना चाहता है, उसे कोई बाधा नहीं हो सकती। तुम्हें क्षोभ इसलिये है कि पुत्र को फल पाने का, प्रतिष्ठा और धन पाने का अवसर नहीं मिल रहा है। यदि मन से फल के मोह को दूर कर सको तो मन में क्षोभ भी न हो। सांसारिक लोभ ही दुख का कारण है। लोभ की सीमा नहीं इसलिये दुख की भी सीमा नहीं।"

लाला सर्वोदय जी की ज्ञान-गंभीर बात सुन कर आँख और मुंह फैलाये देखते रह गये। यथार्थ कुछ कहना चाहते थे परन्तु साम्य ने सर्वोदय से पूछ लिया—"महात्मा जी, सांसारिक लोभ से क्या अभिप्राय ? जीवन-रक्षा और निर्वाह के लिये प्रयत्न के फल की आशा को भी आप लोभ कह देंगे तो काम कैसे चलेगा ?"

सर्वोदय जी मुस्करा दिये—"जीवन की रक्षा और निर्वाह के लिये 'उस' पर भरोसा करो !" सर्वोदय जी ने तर्जनी से आकाश की ओर संकेत किया, "निर्वाह तो एक मुट्ठी अन्न और दो हाथ कपड़े से हो सकता है……"

यथार्थ ने टोक दिया—"महात्मा जी, शरीर में प्राण बने रहना ही मानव जीवन नहीं कहा जा सकता। मानव जीवन तो चेतना और प्रयत्न से जीवन को समर्थ और सार्थक बना सकने में है।"

सर्वोदय जी के ओंठ वितृष्णा से बिचक गये—"मानव की चेतना और

प्रयत्न क्या लोभ और अहिंसा के संघर्ष में फंसे रहने में ही हैं ? पहले आई० ए० एस० का ऊंचा ओहदा पाने की इच्छा से मन को व्याकुल करो, फिर पद-वृद्धि की इच्छा से बेचैन रहो, तिस पर भी देखोगे कि अभी संसार में तुम से बहुत बड़े-बड़े हैं। उन से स्पर्धा और ईर्ष्या करोगे। इस से भी संतोष न मिल सकेगा। संतोष तो स्वयं कुछ न चाह कर दूसरों की सेवा करने में है।"

यथार्थ भी मुस्कराये—"महात्मा जी, दूसरों की सेवा कर सकने की इच्छा भी तो एक प्रकार की इच्छा ही है। इच्छा-मुक्त तो आप तब भी नहीं हुये। गांधी जी अपने निधन से पूर्व पाकिस्तान जाकर पाकिस्तानी भाइयों की सेवा करना चाहते थे परन्तु पाकिस्तानियों ने उन्हें सेवा का अवसर देना स्वीकार नहीं किया। क्या गान्धी जी ने पाकिस्तानियों की रुखाई से निराशा अनुभव न की होगी ?"

साम्य ने हाथ उठाकर पूछा—"हम जानना चाहते हैं कि पर-सेवा और लोक-सेवा की इच्छा से अभिप्राय क्या है ? क्या आप चाहते हैं दूसरे लोग कष्ट में रहें, आप की सेवा के मोहताज बने रहें ? आप के जीवन का उद्देश्य दीनों की सेवा हो और दीनों के जीवन का उद्देश्य आप को सेवा का पुण्य कमाने का अवसर देना रहे ! पर-सेवा से अपने जीवन को सफल बनाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही आप ऐसी व्यवस्था का समर्थन करेंगे जिस से समाज में दीन बने रहें, जैसे राजा प्रजा पर अपने शोषण का अंकुश जमाकर प्रजापालक होने का दम्भ करता था। मानव को मानव से दया और सेवा नहीं चाहिये, 'स्वत्व' चाहिये।"

सर्वोदय जी अपनी बात की ऐसी विरोध और हिंसापूर्ण व्याख्या सुन गंभीर हो गये।

कलाधर विस्मय से आँखें फैला कर बोल पड़े—"मानव को मानव से सेवा नहीं चाहिये, क्या कहते हो ? शिशु को माता से सेवा नहीं चाहिये, माता को वृद्धावस्था में पुत्र से सेवा नहीं चाहिये और पुरुष को नारी की कोमल भावनाओं का प्रश्रय और आधार नहीं चाहिये !"

श्रीमती कलाधर बोल पड़ीं—"वाह, यदि जीवन से सेवा का माधुर्य समाप्त हो जाय तो जीवन बिल्कुल स्वार्थपर और पाशविक हो जायेगा।"

यथार्थ साम्य की बात का ऐसा अभिप्राय निकाले जाने से विचारपूर्ण मुद्रा में बोले—"यह यथार्थ की विडम्बना है। जिन सेवाओं की बात आप कर

रहे हैं, वह परलोक भावना से नहीं, दैन्य से भी नहीं, अपने जीवन की पूर्णता और संतोष के लिये अपने स्वत्व से की जाती हैं !"

सर्वोदय जी अपनी उत्तेजना को दबा कर बोले—"स्वत्व ! स्वत्व !! स्वत्व !!! स्वत्व का लोभ, स्वत्व का अहंकार और स्वत्व का प्रमाद यही तो सब दुःखों का मूल हैं। यह मेरा है, यह मैं करता हूं, मुझे करना चाहिये; यही तो सब से बड़ा अज्ञान है।"

"सत्य है, सत्य है" लाला ने सर्वोदय जी से परम्परागत सत्य-ज्ञान सुन कर प्रशंसा में समर्थन किया, "गीता में भी तो यही कहा गया है।"

साम्य बोले—"गीता में क्या कहा है ? आप के पुत्र के साथ जो अन्याय हुआ है, उसे चुपचाप सह लेना चाहिये ? क्या गीता कहती है कि मनुष्य भावना-शून्य हो जाये और अपने मानवीय अधिकारों की, न्याय-अन्याय की बात न सोचे और निष्क्रिय हो जाये ?"

सर्वोदय जी ने विस्मय प्रकट किया—"गीता निष्क्रियता का नहीं कर्मण्यता का उपदेश देती है। गीता से बड़ा कर्मयोग कौन है ! गीता तो कर्म का ही उपदेश देती है। गीता फल के मोह में न फंसने की चेतावनी देती है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' (मनुष्य को कर्त्तव्य समझ कर कर्म करना चाहिये। फल में आसक्ति नहीं होनी चाहिये)।"

यथार्थ भी आगे खिसक कर बोल पड़े—"मनुष्य को कर्म करने का ही अधिकार हैं। वह कर्म करने में ही स्वतंत्र है। अपने कर्म के फल पर उस का अधिकार नहीं। वह अपने कर्म का फल पाने का यत्न न करे, इस सिद्धांत या उपदेश का व्यवहारिक अर्थ क्या हुआ ? क्या यह समझा जाना चाहिये कि लाला के पुत्र को नौकरी के कम्पीटीशन की तैयारी करने का अधिकार था परन्तु पास हो जाने पर भी नियुक्त हो जाने या नौकरी पा सकने का अधिकार नहीं ?"

साम्य और भी अधिक ऊंचे स्वर में बोले—"नहीं साहब, इन के विचार में गीता के उपदेश का अर्थ हैं कि कर्मकारों, उत्पादन के लिये श्रम करने वाले श्रमिकों का कर्त्तव्य केवल जान लड़ा कर अधिक से अधिक उत्पादन करते जाना है, अपने श्रम का फल, पैदावार या मजदूरी मांगने का अधिकार उन्हें नहीं है ! फल पर साधनों के स्वामियों, मालिक लोगों का ही अधिकार हैं। काम और श्रम करने वालों का धर्म फल की उपेक्षा कर शान्ति, संतोष और अहिंसा से शोषण सहते जाना ही है।"

"हो ! हो !" कलाधर जी साम्य की बात को उपहास में उडा देने के लिये बोले, "वाह साहब, क्या कहने ! आप ने गीता में भी पूंजीवादी शोषण का समर्थन ढूंढ निकाला। आप के ख्याल में कृष्ण भगवान भी बड़े भारी कैपिटलिस्ट थे। उस समय पूंजीवाद था ही कहां जिस का समर्थन गीता ने किया ? यह आप की भावना का प्रतिबिम्ब मात्र है।"

साम्य कलाधर की बात से झेंपे नहीं, बोल पड़े—"शोषण, दूसरे के फल को हथियाने की प्रवृत्ति, केवल पूंजीवाद का ही आविष्कार नहीं है कलाधर जी ! यह तो साधनों पर स्वामित्व जमाकर दूसरों के श्रम का फल बटोरने की बर्बर इच्छा का परिणाम है। साधनों या भूमि के स्वामित्व के लिये ही तो कौरव-पाडव लड मरे। दोनों ही किसानों से मालगुजारी बटोर कर ऐश करना चाहते होंगे। पाडव बेचारे दस-पन्द्रह गावों की जमींदारी से सतुष्ट हो जाने के लिये तैयार थे परन्तु दुर्योधन उन्हे एक उंगली भर जमीन देने के लिये भी राजी नहीं हुआ। उस के लोभ का अन्त नहीं था।"

सर्वोदय जी मुस्करा दिये—"भूमि के लिये उस लोभ का परिणाम क्या हुआ—हिंसा ! और हिंसा से सर्वनाश !"

यथार्थ चिन्ता की मुद्रा में भवें उठा कर बोले—"महात्मा जी, क्षमा कीजिये ! वह हिंसा करायी थी स्वयं भगवान ने ही।"

कलाधर ने टोक दिया—"भगवान ने हिंसा नहीं करायी थी। भगवान ने तो कौरवों को हिंसा करने से रोका था।"

साम्य उछल पड़े—"हम भी इस युग के कौरवों को हिंसा करने से रोकना चाहते है।"

कलाधर हंस दिये—"वाह ! वाह ! असली कृष्ण-भक्त तो तुम्हीं हो !"

यथार्थ अपनी बात पूरी करने के लिये बोले—"लोभ का अर्थ क्या है ? अपने श्रम के फल की इच्छा को लोभ नहीं कहा जा सकता। महात्मा जी, आंधी, पानी और धूप से बचने के लिये मकान बनाना लोभ नहीं है, किराये के लिये मकान बनाना ही लोभ है। यथार्थ में लोभ तो दूसरे के श्रम के फल की इच्छा को ही कहना चाहिये। अपने श्रम के फल अथवा स्वत्व के लिये, प्रयत्न अथवा न्याय के लिये संघर्ष को लोभ या हिंसा नहीं कहा जा सकता।"

सर्वोदय जी ने समझाया—"कर्म के फल को अपना समझना, उस लोभ को अधिकार और न्याय समझ बैठना ही तो आसक्ति और मोह है। जहां

[illegible] हुई, [illegible] हो गये।"

[illegible]

सर्वोदय जी ने [illegible] कोई भी कर्म फल के लिये ही किया जाता है। कर्म का विचार किसी फल के लिये ही होता है। मनुष्य हो अथवा, और जन्तु भी किसी न किसी प्रयोजन या फल की आशा के लिये ही कर्म का श्रम करते हैं। संस्कृत में पुरानी [illegible] है—'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' (प्रयोजन के बिना अथवा फल की आशा न रखे बिना [illegible] और भी श्रम नहीं करता)। भगवान कृष्ण भी इस उक्ति को मानते थे। उन्होंने फल की [illegible] करने का उपदेश नहीं दिया।" [illegible] लाला और कलाधर की ओर देखा, "गीता का यह उपदेश नहीं है कि 'काम कर और कुएं में डाल'। गीता के उपदेश का अर्थ है—असफलता और कष्ट की आशंका से निरुत्साहित न होकर, अन्यायी का विनाश और अंत न करके जो कर्तव्य न्याय और अधिकार है, उस से पीछे न हटो। सदा उस के लिये प्रयत्न करने में सन्तोष समझो। कृष्ण के समझाने से अर्जुन ने यही तो किया था!"

लाला ने गर्दन हिला कर स्वीकार किया—"हां, यह भी ठीक है।"

सर्वोदय जी ने यथार्थ की बात उलटे देखकर चेतावनी में तर्जनी उठा दी—"कर्म जरूर करो परन्तु अनासक्त हो कर……"

यथार्थ ने टोक दिया—"आप तो फिर वही बात कह रहे हैं—कर्म करो, फल के विचार के बिना।"

सर्वोदय जी उन की बात अनसुनी कर कहते चले गये—"मनुष्य को संसार में इस प्रकार रहना चाहिये जैसे……पद्मपत्रमिवाम्भसी!"

श्रीमती कलाधर और लाला ने संस्कृत का वाक्य न समझ सकने के कारण प्रभावित होकर जिज्ञासा से सर्वोदय जी की ओर देखा।

सर्वोदय जी ने गंभीर ज्ञान की व्यवस्था करने के लिये दोनों हाथ फैला कर बताया—"ज्ञानी लोगों का उपदेश है कि मनुष्य को इस संसार में इस प्रकार रहना चाहिये जैसे जल में कमल रहता है। कमल जल में रहता है परन्तु वह जल से भीगता नहीं।" सर्वोदय जी तत्व की बात कह कर संतोष से मुस्करा दिये।

श्रीमती कलाधर और लाला तत्व की बात सुन कर ज्ञान-मुग्ध हो गये।

कलाधर जी ने सराहना में सिर हिलाकर कहा—"वाह ! वाह ! क्या सुन्दर उपमा है ?"

साम्य बोल उठे—"हां, हां ! आप का मतलब है पानी में पुरइन ?"

कलाधर जी प्रसन्न हो गये—"वाह ! साथी वाह !" उन्हों ने साम्य की पीठ ठोंक दी, "तुम भी कविता करने लगे । मित्र, तुमने तो गागर में सागर को भर दिया है । पूरा भाव आ गया दो शब्दों में और अनुप्रास भी ।" उन्होंने रस लेकर दोहराया, "पानी में पुरइन !" और बोले, "आध्यात्म का इस से सुन्दर काव्यमय रूपक क्या हो सकता है ? "पानी में पुरइन ।"

यथार्थ ने समझने के प्रयत्न में गर्दन हिलायी । मुह से निकल गया—"पानी में पुरइन ''' हां उपमा बहुत सुन्दर है और यथार्थ भी है । महात्मा जी, पुरइन अर्थात् कमल जल में रहता है और जल से भीगता भी नहीं, यह सच है परन्तु कमल को जल से निकाल लीजिये तो दो पल में ही कमल की सम्पूर्ण शोभा समाप्त हो जायेगी । यथार्थ बात कह रहा हूं लाला जी !" उन्होंने पड़ोसी की ओर देखा ।

लाला ने गर्दन के संकेत से स्वीकार किया—"हां, यह भी ठीक है, जल से निकला कमल तुरत मुरझा जाता है ।"

यथार्थ समर्थन पाकर बोले—"ऐसे ही संसार के जल में कमल की तरह रहने वाले ज्ञानियों और महात्माओं को समाज न पाले-पोसे तो वे दो दिन में सूख जायें''''"

साम्य बहुत जोर से कहकहा लगा कर हंस पड़े—"वाह भाई, वाह कलाधर जी, वास्तव में ज्ञानियों-त्यागियों की उपमा जल में कमल से ठीक ही है ।"

यथार्थ ने सुनने का संकेत किया और बोले—"कमल जल में बिना भीगे रहता है परन्तु कलाधर जी, उसके रोम-रोम में जल ही समाया रहता है । वह जल से ही जीवित रह कर जल को हेय समझने, उसे न छूने का अहंकार करता है । कलाधर जी, कमल गर्व से अपना सिर जल से ऊपर उठाये रहता है परन्तु उसकी जड़ होती है कीचड़ में—जल के मल और मिट्टी में ! ऐसे ही संसार से वैराग्य रखने वाले महात्माओं को भी, समाज में पाप करने वाला कीचड़ ही अपने पाप क्षमा करा लेने की आशा में पालता-पोसता है ।"

"वाह ! वाह ! यही है संसार की माया से वैराग्य की वास्तविकता ''" साम्य उल्लास से उछल पड़े ।

सर्वोदय जी के चेहरे पर विरोध की गंभीरता छा गई। साम्य उन के असंतोष की परवाह न कर बोलते चले गये—"समाज के श्रम के फल पर जीवित रह कर, समाज से अनासक्त और असम्बद्ध रहने से बढ़ कर स्वार्थ, निर्लज्जता और दम्भ क्या हो सकता है? कमल तो शोषकों का प्रतीक है।"

साम्य की बात से कलाधर के माथे पर बल पड़ गये—"तुम साम्यवादियों के लिये तो संसार में जो कुछ सुन्दर है, शोषण ही है। समाज को समाप्त कर दो, कला को समाप्त कर दो, सौंदर्य को समाप्त कर दो! फूलों को समाप्त कर दो, कांटे बो दो!"

यथार्थ गोष्ठी में कड़ुवापन आ जाने से घबराकर बोले—"नहीं, सौंदर्य को क्यों समाप्त किया जाय! 'पानी में पुरइन' न सही, 'पुरइन में पानी' ही हो तो क्या हर्ज है?"

कलाधर जी ने भवें चढ़ा कर पूछा—"परम्परागत सूक्ति को, मुहावरे को बिगाड़ने से क्या लाभ?"

सर्वोदय जी बड़ी सहनशीलता से मुस्कराये—"विरोध की भावना हो तो विरोध ही लक्ष्य बन जाता है।"

यथार्थ ने सुनने के लिये अनुरोध के संकेत में हाथ उठा कर कहा—"सुनिये तो—'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'—कोई बात पुरानी या परम्परागत होने से ही सदा ठीक नहीं मानी जा सकती। बताइये, पुरइन में पानी क्या कम सुन्दर लगता है? पुरइन पर पानी की बूंदें मोती बन जाती हैं और वह बूंदें अनासक्त और अलग-थलग भी रहती हैं। जल की बूंद का मोती दिखाई देने का अहंकार भी मिथ्या नहीं है क्योंकि जल ही पुरइन को उत्पन्न करता है, मोती को भी जल ही उत्पन्न करता है और अहंकार भी नहीं करता। संसार से अनासक्ति हो तो ऐसी हो कि संसार और समाज की उपेक्षा न करे, संसार और समाज को अपने अस्तित्व से पुष्ट करें।" यथार्थ ने साम्य को सम्बोधन किया, "क्यों साम्य जी!"

साम्य ने सन्तोष से स्वीकार किया—"पुरइन में पानी—यही तो जनवादी और समाजवादी दृष्टिकोण है।"

—:o:—

अंग्रेजी तोते

तप्पी—नपेश्वर बाजपेयी, इन्स्टीट्यूट से लौटते समय कुछ देर काफी-चौपाल में बैठ लेता है। काफी का प्याला तो बहाना है। काफी तो इन्स्टीट्यूट की कैंटीन में भी मिल सकती है। काफी चौपाल में खींच लाती है, बतरस-लालच। तप्पी को ही क्या दोष दें, बिहारी कह गये हैं—'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।' राधा भी बतरस के लालच का दमन नहीं कर सकती थी।

तप्पी ने काफी चौपाल में कदम रख, पहले से बैठे बहसियों के लिये नजर दौड़ाई।

अंग्रेजी दैनिक के संवाददाता नायर ने हाथ उठा कर तप्पी को संकेत से बुला लिया। नायर के साथ तप्पी के दूसरे परिचित भी बैठे थे—यूनीवर्सिटी का नवजवान लेक्चरार देव और उस का समवयस्क बनर्जी भी थे। बनर्जी अपनी वकालत जमा पाने के प्रयोजन से बहस करने की सामर्थ्य बढ़ाता रहता है।

तप्पी ने खाली कुर्सी पर आसन जमाते हुये नायर को सम्बोधन किया—"हल्लो नारद मुनी, आज क्या खबर छाप रहे हो ?"

सन्तान की राशि का विचार करके पिता-माता का बहुत प्यार से रखा हुआ नाम तो केवल दस्तखत करने के लिये ही रह जाता है और गुण, कर्म, स्वभाव के प्रभाव से परिचितों द्वारा दिया नाम अधिक प्रसिद्ध हो जाता है। नायर, नारद मुनी सम्बोधन किये जाने से चिढ़ता नहीं। वह बात सुन कर वह दूसरों को बात की टंगड़ी लगा कर लड़खड़ा देना अपना अधिकार समझ लेता है।

नायर ने देव की ओर कटाक्ष किया—"हिन्दी वाले से कह रहा था, हमने हिन्दी टाईप राइटर में फिजूल पैसे बरबाद किये। प्रेसीडेंट ने डायरेक्टिव

[illegible] ...... ।"

बनर्जी बोला "नहीं भाई, ये हिन्दी वाले बहुत संकीर्ण विचार के हैं। आखिर तो हिन्दी [illegible] की भाषा है। संकीर्णता उन का स्वभाव है। ये लोग [illegible] के भय से [illegible] देश के वैज्ञानिक विकास और समस्याओं से दूर रहना चाहते हैं। [illegible] बिल्कुल ठीक है—हिन्दी वालों की असहिष्णुता ने हिन्दी को पीछे डाल दिया है।"

देव ने बनर्जी को घूर कर पूछा—"असहिष्णुता से क्या मतलब?"

नायर ने बनर्जी का समर्थन किया—"असहिष्णुता नहीं तो क्या है? जब कि अधिकांश लोगों को अंग्रेजी को केन्द्रीय भाषा बनाये रखने में सुविधा है तो हिन्दी वाले हिन्दी को केन्द्रीय भाषा बनाने का आग्रह क्यों करते हैं? जिस भाषा से शासन और शिक्षा का काम नहीं चल सकता उस के प्रति भावुकता से क्या लाभ?"

तप्पी ने कुर्सी से उचक कर कहा—"कौन कहता है अधिकांश लोगों को अंग्रेजी से सुविधा है और अधिकांश जनता अंग्रेजी को केन्द्रीय भाषा बनाये रखने के पक्ष में है?"

"बिल्कुल प्रत्यक्ष है" नायर ने उत्तर दिया, "जनमत के कारण ही सरकार को हिन्दी स्थगित करनी पड़ी है। राष्ट्रपति को इसीलिये अंग्रेजी कायम रखने का आदेश देना पड़ा है।"

तप्पी और आगे झुका—"तुम्हारा मतलब है कि देश के अधिकांश लोग अंग्रेजी जानते हैं?"

नायर ने इनकार किया—"यह मैंने कब कहा कि अधिकांश लोग अंग्रेजी जानते हैं............।"

तप्पी उस की बात दबा देने के लिये ऊंचे स्वर में बोला—"जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते वे भी अंग्रेजी केन्द्रीय भाषा रहने में सुविधा अनुभव करते हैं? वे चाहते हैं कि शासन ऐसी भाषा में हो जिसे वे न समझते हों? तुम्हें मालूम है, जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार देश में सब से अधिक अंग्रेजी जानने वाले केरल में हैं और जनाब, केरल में अंग्रेजी पढ़े दो प्रतिशत हैं। इन अंग्रेजीदां

लोगो मे वह लोग भी सम्मिलित हैं जिन्होंने अंग्रेजी की एक रीडर पढ़ ली है पर अंग्रेजी का न एक वाक्य बोल सकते हैं, न पढ़ सकते हैं। स्पष्ट है, देश मे दो प्रतिशत से अधिक लोग अंग्रेजी मे सुविधा अनुभव नहीं कर सकते।"

देव बोल पड़ा—"उन दो प्रतिशत मे से भी सब लोग अंग्रेजी के पक्ष में नहीं हैं। अनेक राजनीतिक दलों के केवल अंग्रेजी जानने वाले लीडरों, देश की नौकरशाही और अंग्रेजी अखबारों की जुबानें बहुत लम्बी हैं। ये लोग जनमत का जैसा चाहें बवंडर खड़ा कर सकते हैं। देश की जनता का बहुमत अंग्रेजी के पक्ष मे है, इस से बड़ा झूठ और क्या हो सकता है ?"

"तो आप सब पर हिन्दी लादेंगे ?" बनर्जी ने आखें चमकाकर पूछा।

देव ने भी उसे घूर कर उत्तर दिया—"हम तो किसी पर कोई भाषा लादने के पक्ष मे नहीं है परन्तु आप दस-पन्द्रह बरस तक सब प्रदेशो पर अंग्रेजी लादे रखना जनता की सुविधा बता रहे है। बगाल, आंध्र, तमिलनाड के लोगों को हिन्दी सीखने मे श्रम करना होगा, उन पर हिन्दी लादना अन्याय होगा, अंग्रेजी क्या वे मा के दूध के साथ पी लेते है ? उन की भाषाओं का दमन करके, उन पर अंग्रेजी लादे रहना क्या प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त और व्यवहार है ?"

देव को सुनने का संकेत कर तप्पी बोला—"यार, एक बात मजेदार है। जब राजनीतिक दलों के लीडर जनता से वोट मागते हैं, सेवा के लिये वायदे करते है तब तो जनता की समझ मे आने वाली भाषा में बात करते हैं परन्तु जब राजगद्दी पर आसन जम जाता है तो कायदे-कानून और प्लान अंग्रेजी में बनाने लगते हैं। जनता को केवल एक बात समझाने की जरूरत रहती है—वोट दो। वोट मिल जाये तो फिर अंग्रेजी की ओट कर लो। जनता तुम्हारी बात और घात समझ न सके।"

"जी हा, आप अंग्रेजी के सिंहासन पर हिन्दी का कब्जा कर लीजिये और अहिन्दी भाषी लोग आँखें झपकाते रहें" नायर ने विरोध किया।

"हम तो किसी पर हिन्दी नहीं लादना चाहते परन्तु आप लोगो पर अंग्रेजी क्यो लादना चाहते हैं ?" देव बोला, "आप यह बताइये, बंगाल मे, आन्ध्र में या तमिलनाड में सरकारी काम-काज चलाने के लिये उन लोगों पर अंग्रेजी लादने की क्या जरूरत है ? अपने प्रदेश में भी सरकारी नौकरी पाने के लिये अंग्रेजी सीखना जरूरी क्यो हो ? या अपने प्रदेश मे अपनी मातृभाषा जानने वाले लोग अयोग्य और अशिक्षित क्यों समझे जायें ?"

से भी अधिक भाषण अंग्रेजी में हुये। आप से अच्छे तो हिन्दी और पंजाबी लोग रहे। इन की विधान सभाओं में सत्तर-अस्सी प्रतिशत भाषण हिन्दी या अपनी भाषाओं में हुये। यह है राष्ट्रीय भावना और अपनी भाषा पर आप का भरोसा !"

नायर ठहाका लगा कर हंस पड़ा—"हिन्दी वाले अंग्रेजी में दूसरे प्रदेशों का मुकाबला नहीं करते इसलिये अंग्रेजी से बहुत चिढ़ते हैं।"

विवाद में कई और लोग भाग लेने लगे। अध्यापक तिवारी बोल पड़ा—"अंग्रेजी में तो आप का मुकाबला रूसी, जापानी, जर्मन कोई भी नहीं कर सका। शायद आप उन सब से योग्य होंगे।"

"सुनो, सुनो" देव ने अपनी बात सुनाने के लिये मेज पर थाप दी, "हिन्दी वालों से आप का मतलब क्या ? हिन्दी वाले हैं कौन ? हिन्दी किस की भाषा है ? जिस हिन्दी को विधान द्वारा भारत की राष्ट्रीय या देश की सम्मिलित भाषा स्वीकार किया गया है, जिस भाषा में हिन्दी की पुस्तकें छपती हैं, हिन्दी के समाचार-पत्र छपते हैं, वह हिन्दी किस प्रदेश की भाषा है ? तपी की भाषा तो अवधी है, जिस भाषा में भारत का सब से बड़ा क्लासिक है—'रामायण'। हमारी है ब्रजभाषा, जिस में पंजाब से लेकर दक्षिण तक के सन्तों ने भक्ति रस के काव्यों की रचना की है। तिवारी की भाषा भोजपुरी है। हिन्दी किस की भाषा है ? न राजस्थानियों की, न दिल्ली-हरियाना के लोगों की, न ग्वालियर और इंदौर के आस-पास के लोगों की। हम अपनी मां और बहू से हिन्दी नहीं बोलते। यह भाषा तो हम लोग अपनी भाषा न जानने वाले लोगों की सुविधा के लिये बोलते हैं। जैसे भारत के नक्शे में देश के किसी भाग का नाम भारत और हिन्दुस्तान नहीं है, वैसे ही हिन्दी देश के किसी भाग या प्रदेश की बपौती या भाषा नहीं है। हिन्दी तो नया शब्द बना लिया गया है। हिन्दी दूसरे देशों के लोग हिन्दुस्तान की भाषा को कहते थे। इस देश के लोग नगरों में, देश के अनेक भागों के बीच पारस्परिक सम्पर्क के लिये बोली जाने वाली भाषा को नागरी कहते थे। भक्तिकाल में कबीर से नामदेव और दादू जैसे सन्तों के प्रभाव से नागरी में ब्रजभाषा का पुट रहा। मुगलों के काल में उन के प्रभाव से फारसी का पुट आ गया। अंग्रेज आये तो उन का प्रभाव पड़ा। देश में राष्ट्रीयता की भावना जागी तो पारिभाषिक शब्दों के लिये और देश की सब भागों की भाषाओं के सामीप्य के लिये सामी

भापा को संस्कृत का आधार देने की प्रवृत्ति आने लगी ।"

तिवारी देव के समर्थन में बोला—"नागरी अथवा हिन्दी ऐतिहासिक रूप से इस देश के प्रदेशों में पारस्परिक सम्पर्क का माध्यम और राष्ट्रीय भावना की प्रतीक रही है। उत्तर से दक्षिण तक के तीर्थों में, बड़ी-बड़ी मिलों और फैक्टरियों में जहां सब प्रदेशों के लोग कार्य करते हैं, क्या वहाँ कोई भापा नहीं बोली जाती ? वही तो नागरी है ! क्या उस भापा का और विकास नहीं हो सकता ? जिस समय देश में विदेशी शासन से स्वतंत्रता की और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये देश के सब भागों में संयुक्त प्रयत्न की चेतना और भावना जागी, उस समय अपने आप को अहिन्दी कहने वाले प्रदेशों के लोगों ने स्वयं ही राष्ट्र की एक भापा वनाने का यत्न किया था और राष्ट्रभापा का स्थान नागरी अथवा हिन्दी को दिया। गांधी जी, सुभाष और राजा जी हिन्दी के सब से बड़े प्रचारक थे। आज आप की दृष्टि में राष्ट्रीय भावना और संयुक्त प्रयत्न का कुछ महत्व नहीं रहा, महत्व है आप की दृष्टि में नौकरियों का। आज आप राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों में बातचीत और सम्पर्क उस भाषा के माध्यम से रखना चाहते हैं, जिसे पहले घृणा से विदेशी भाषा कहते थे।"

नायर ने बहस की गम्भीरता ठंडी पड़ती देख कर फिर फुलझड़ी छोड़ दी—"अरे भाई, अंग्रेजी के बिना हर्गिज काम नहीं चल सकता........।"

"तो फिर अंग्रेज ही बन जाओ" देव ने चिढ़ कर कहा।

"अंग्रेज बनने की कोशिश तो हो ही रही है" तिवारी ने कहा, "सब समर्थ भारतवासियों का लक्ष्य अंग्रेज बन जाना हो गया है। आप देख लीजिये, अंग्रेजों के जाने के बाद से यूरोपियन ढंग के स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या कितनी बढ़ गयी है। राष्ट्रीय सरकार के सब अफसर अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजते हैं। जिस खद्दरधारी की सामर्थ्य हो जाती है, औलाद को अंग्रेजी स्कूल में भेजने लगता है। सरकारी और साधारण स्कूल तो जनता एक्सप्रेस हैं। जब समर्थ लोग अपने बच्चों को विशेष स्कूलों में भेज सकते हैं तो समर्थ लोग साधारण स्कूलों की चिंता क्यों करने लगे ?"

तप्पी ने नायर की बात का समर्थन किया—"हम भी कहते हैं, देश का शासन अंग्रेजी के बिना नहीं चल सकता। कारण यह है कि शासन चलाती है नौकरशाही और शासन की नीति बनाते हैं मंत्री बने हुये पुराने राष्ट्रीय नेता। अंग्रेज सरकार ने अपनी नौकरशाही को अंग्रेजी में शासन करना सिखाया था।

भारत की नौकरशाही ने शासन के लिये आवश्यक बातों को तोते की तरह अंग्रेजी में रट लिया है। सर्वसाधारण की भाषा बोलने में उन्हें जनता में मिल जाने की ग्लानि अनुभव होती है। लोग-बाग की भाषा न बोल सकने से अपनी विशिष्टता और गर्व अनुभव होता है। कांग्रेसी नेता स्वराज्य के लिये सदा अंग्रेजी में दर्खास्तें देते थे। अंग्रेजों ने उन की दर्खास्त अंग्रेजी में ही मंजूर की है इसीलिये कांग्रेसी नेताओं का आदि-अंत अंग्रेजी में ही है।"

बनर्जी ने गम्भीर होकर कहा—"अपने ख्याल में आप बहुत बड़ा मज़ाक कर रहे हैं लेकिन एक केन्द्र में इतने भाषा-भाषी लोगों के प्रदेशों का संयुक्त शासन करना हो तो सम्पर्क के लिये कोई साझा माध्यम चाहिये ही ।"

देव ने टोक दिया—"अकबर, औरंगजेब भी तो लगभग पूरे भारत पर ही शासन करते थे। उससे पहले सुनते है, चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक भी इतने ही विस्तृत भाग पर शासन करते थे। आप का विचार है, वे लोग गूंगों की तरह संकेतों से ही काम चला लेते होंगे ''।"

नायर ने चुनौती दी—"आप अब भी पूरे भारत पर उत्तर की हुकूमत चलाना चाहते हैं, उत्तर भारत की भाषा पूरे देश पर लादना चाहते हैं! यह प्रजातंत्र का जमाना है, अब आप की तानाशाही नहीं चल सकती!"

तप्पी ने उलटी चुनौती दी—"यह प्रजातंत्र शासन है कि दो प्रतिशत को भी समझ में न आ सकने वाली भाषा में शासन किया जाय ? भारत सरकार जनता के सहयोग से शासन करना चाहती है या जनता को दबाने के लिये जनता के लिये अबोध भाषा में षड़यन्त्र कर रही है! अंग्रेजी शासन में तो शासक की सुविधा के लिये अंग्रेजी सहनी पड़ती थी। अब किस की सुविधा के लिये सहें ?"

देव ने उत्तर दिया—"अंग्रेजों की छोड़ी विरासत, नौकरशाही की सुविधा के लिये।"

तप्पी कहता गया—"कहने को देश स्वतन्त्र है, प्रजातंत्र है परन्तु देश का शासन, शासन की नीति और योजनायें भारत की चौदह भाषाओं में से किसी में न होकर अंग्रेजी में बनायी जाती है।"

बनर्जी ने खीझ प्रकट की—"जी हां, सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट में सब लोग अपनी अपनी भाषा शुरू कर दें तो वह चिड़िया-घर बन जायगा। सब लोग अपनी-अपनी बोलियों में चहचहायेंगे। सुनने-समझने की चिंता किसी को नहीं होगी।"

भाषा को संस्कृत का आधार देने की प्रवृत्ति आने लगी ।"

तिवारी देव के समर्थन में बोला—"नागरी अथवा हिन्दी ऐतिहासिक रूप से इस देश के प्रदेशों में पारस्परिक सम्पर्क का माध्यम और राष्ट्रीय भावना की प्रतीक रही है । उत्तर से दक्षिण तक के तीर्थों में, बड़ी-बड़ी मिलों और फैक्टरियों में जहां सब प्रदेशों के लोग कार्य करते हैं, क्या वहाँ कोई भाषा नहीं बोली जाती ? वही तो नागरी है ! क्या उस भाषा का और विकास नहीं हो सकता ? जिस समय देश में विदेशी शासन से स्वतंत्रता की और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये देश के सब भागों में संयुक्त प्रयत्न की चेतना और भावना जागी, उस समय अपने आप को अहिन्दी कहने वाले प्रदेशों के लोगों ने स्वयं ही राष्ट्र की एक भाषा बनाने का यत्न किया था और राष्ट्रभाषा का स्थान नागरी अथवा हिन्दी को दिया । गांधी जी, सुभाष और राजा जी हिन्दी के सब से बड़े प्रचारक थे । आज आप की दृष्टि में राष्ट्रीय भावना और संयुक्त प्रयत्न का कुछ महत्व नहीं रहा, महत्व है आप की दृष्टि में नौकरियों का । आज आप राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों में बातचीत और सम्पर्क उस भाषा के माध्यम से रखना चाहते हैं, जिसे पहले घृणा से विदेशी भाषा कहते थे ।"

नायर ने बहस की गम्भीरता ठंडी पड़ती देख कर फिर फुलझड़ी छोड़ दी—"अरे भाई, अंग्रेजी के बिना हर्गिज काम नहीं चल सकता········ ।"

"तो फिर अंग्रेज ही बन जाओ" देव ने चिढ़ कर कहा ।

"अंग्रेज बनने की कोशिश तो हो ही रही है" तिवारी ने कहा, "सब समर्थ भारतवासियों का लक्ष्य अंग्रेज बन जाना हो गया है । आप देख लीजिये, अंग्रेजों के जाने के बाद से यूरोपियन ढंग के स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या कितनी बढ़ गयी है । राष्ट्रीय सरकार के सब अफसर अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजते है । जिस खद्दरधारी की सामर्थ्य हो जाती है, औलाद को अंग्रेजी स्कूल में भेजने लगता है । सरकारी और साधारण स्कूल तो जनता एक्सप्रेस हैं । जब समर्थ लोग अपने बच्चों को विशेष स्कूलों में भेज सकते हैं तो समर्थ लोग साधारण स्कूलों की चिंता क्यों करने लगे ?"

तप्पी ने नायर की बात का समर्थन किया—"हम भी कहते हैं, देश का शासन अंग्रेजी के बिना नहीं चल सकता । कारण यह है कि शासन चलाती है नौकरशाही और शासन की नीति बनाते हैं मंत्री बने हुये पुराने राष्ट्रीय नेता । अंग्रेज सरकार ने अपनी नौकरशाही को अंग्रेजी में शासन करना सिखाया था ।

भारत की नौकरशाही ने शासन के लिये आवश्यक बातों को तोते की तरह अंग्रेजी में रट लिया है। सर्वसाधारण की भाषा बोलने में उन्हें जनता में मिल जाने की ग्लानि अनुभव होती है। लोग-बाग की भाषा न बोल सकने से अपनी विशिष्टता और गर्व अनुभव होता है। कांग्रेसी नेता स्वराज्य के लिये सदा अंग्रेजी में दर्खास्तें देते थे। अंग्रेजों ने उन की दर्खास्त अंग्रेजी में ही मंजूर की है इसीलिये कांग्रेसी नेताओं का आदि-अंत अंग्रेजी में ही है।"

बनर्जी ने गम्भीर होकर कहा—"अपने ख्याल में आप बहुत बड़ा मज़ाक कर रहे हैं लेकिन एक केन्द्र से इतने भाषा-भाषी लोगों के प्रदेशों का संयुक्त शासन करना हो तो सम्पर्क के लिये कोई साझा माध्यम चाहिये ही ।"

देव ने टोक दिया—"अकबर, औरंगजेब भी तो लगभग पूरे भारत पर ही शासन करते थे। उससे पहले सुनते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक भी इतने ही विस्तृत भाग पर शासन करते थे। आप का विचार है, वे लोग गूंगों की तरह संकेतों से ही काम चला लेते होंगे ....।"

नायर ने चुनौती दी—"आप अब भी पूरे भारत पर उत्तर की हुकूमत चलाना चाहते हैं, उत्तर भारत की भाषा पूरे देश पर लादना चाहते हैं! यह प्रजातंत्र का ज़माना है, अब आप की तानाशाही नहीं चल सकती!"

तम्पी ने उलटी चुनौती दी—"यह प्रजातंत्र शासन है कि दो प्रतिशत को भी समझ में न आ सकने वाली भाषा में शासन किया जाय? भारत सरकार जनता के सहयोग से शासन करना चाहती है या जनता को दबाने के लिये जनता के लिये अबोध भाषा में षड्यन्त्र कर रही है! अंग्रेजी शासन में तो शासक की सुविधा के लिये अंग्रेजी सहनी पड़ती थी। अब किस की सुविधा के लिये सहें?"

देव ने उत्तर दिया—"अंग्रेजों की छोड़ी विरासत, नौकरशाही की सुविधा के लिये।"

तम्पी कहता गया—"कहने को देश स्वतंत्र है, प्रजातंत्र है परन्तु देश का शासन, शासन की नीति और योजनायें भारत की चौदह भाषाओं में से किसी में न होकर अंग्रेजी में बनायी जाती हैं।"

बनर्जी ने खीज प्रकट की—"जी हां, सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट में सब लोग अपनी अपनी भाषा शुरू कर दें तो वह चिड़िया-घर बन जायगा। सब लोग अपनी-अपनी बोलियों में चहचहायेंगे। सुनने-समझने की चिंता किसी को नहीं होगी।"

तप्पी ने प्रश्न किया—"यह आप का जनवादी दृष्टिकोण है कि सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट के पब्लिक सर्वेन्ट की ही सुविधा का विचार किया जाये, देश की अट्ठानवे प्रतिशत जनता की सुविधा का विचार न किया जाये। सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट में असुविधा न हो इसलिये आप सब राज्यों को अंग्रेजी के चाबुक से हांकते रहेंगे। सेन्ट्रल से आदेश अंग्रेजी में जाते हैं। राज्यों की नौकरशाही को अपने कारनामे सेन्टर के सामने अंग्रेजी में पेश करने पड़ते हैं इसलिये राज्यों की नौकरशाही भी अंग्रेजी में अमल करती चली जाती है········।"

"और रास्ता ही क्या है?" नायर ने पूछा।

"रास्ता बहुत सीधा है" तप्पी ने उत्तर दिया, "आज भारत सरकार के सम्बन्ध सभी राष्ट्रों से हैं। भारत सरकार सब देशों के राजदूतों को उन के देश की भाषाओं में ही सम्वाद लिख कर देती है। साथ में एक हिन्दी प्रति भी रहती है। माना यह जाता है कि दोनों में अंतर होने पर प्रामाणिक हिन्दी प्रति होगी। देश के विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों के साथ भी इतना सलूक क्यों नहीं किया जा सकता? आप की सरकार रूस और चीन को रूसी और चीनी भाषाओं में पत्र लिख सकती है, बंगाल और मद्रास राज्यों की सरकारों को बंगला और तमिल भाषाओं में पत्र नहीं लिख सकती? प्रत्येक राज्य को उस राज्य की भाषा में ही आदेश दिये जायें। राज्य आप की भाषा में आप की बातें और समस्यायें केन्द्र को भेज सकेगा। भारत सरकार को अंग्रेज सरकार से विरासत में मिले अफसरों की अंग्रेजी की आदत के कारण, आप भविष्य के लिये भी सभी लोगों पर अंग्रेजी लाद रहे हैं। भारत सरकार को सब राज्यों से उन की भाषा में ही सम्पर्क निवाहना चाहिये। सरकार को किस प्रदेश की भाषा जानने वाले नहीं मिल सकते? अपने-अपने प्रदेश में लोग अपनी-अपनी भाषा में काम करें।"

नायर ने विरोध किया—"वाह, साझा माध्यम कोई न रहे! सब लोग जायें! साझा माध्यम या साझा सूत्र न रहेगा तो पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के लोग मिलने पर किस भाषा में सम्पर्क करेंगे?"

देव ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया—"देश के अट्ठानवे प्रतिशत लोग भी से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण आते-जाते हैं। वे किस प्रकार अपना योजन पूरा करते हैं? आप को पब्लिक सर्वेंट (जनसेवक) बनने वाले सरकारी नौकरों की सुविधा का ख्याल है, शेष जनता का नहीं!"

बनर्जी ने फिर आग्रह किया—"आखिर पब्लिक सर्विस कमीशन और आई० ए० एस० में भाग उम्मीदवारों की परीक्षायें किस भाषा में होंगी? हिन्दी वालों को सब किस्म का प्रयोजन है कि उन्हें सुविधा हो जाये।"

देव ने झल्ला कर टोकाटाकी—"फिर वही व्यर्थ बातें, हिन्दी वाले? हिन्दी वाला कौन है? हम तो यह नागरी या हिन्दी बोलते ही तुम लोगों की सुविधा के लिये हैं। हमारी तो अपनी मधुर, कोमल ब्रज की बोली है।"

शर्मा ने हाथ उठाकर समाधान किया—"किसी भी प्रदेश को विशेष सुविधा या असुविधा होने का कारण नहीं है। केन्द्र की सरकारी नौकरी ही सब से बड़ी महत्वाकांक्षा है? राज्यों की प्रजा के प्रति हजार लोगों में से शायद एक आदमी केन्द्र की सरकारी नौकरी पा लेता होगा, इस में भी सन्देह है। प्रति हजार में से ऐसे एक आदमी के लिये देश भर पर अंग्रेजी लाद कर करोड़ों प्रजा का दमन किया जा रहा है। अहिन्दी प्रदेशों के कुछ एक आदमी केन्द्र में नौकरी पा सकें इसलिये केन्द्र में शासन की भाषा अंग्रेजी रहना चाहिये। केन्द्र में शासन की भाषा अंग्रेजी है इसलिये राज्यों की भाषा भी अंग्रेजी रहनी चाहिये, यह एक विषम चक्र है जिसमें देश की अंग्रेजी न जानने वाली प्रजा सदा पिसती रहेगी और देश की जनता पर अंग्रेजी सीखने की विवशता सदा बनी रहेगी। शासक और शासित की भाषा में भी सदा अन्तर रहेगा और आप उसे प्रजा द्वारा शासन कहते रहेंगे, क्या मजाक है? आप प्रत्येक प्रदेश की जनसंख्या के अनुपात से केन्द्र की सरकारी नौकरियां बांट लीजिये या कहिये आप अपनी अंग्रेजी भक्ति के लिये कुछ अधिक इनाम चाहते हैं? सरकारी नौकरी के महत्वाकांक्षी यदि अंग्रेजी सीख सकते हैं तो कोई दूसरी भाषा भी सीख सकते हैं। असल समस्या है कि हमारे मौजूदा नेता और नौकरशाह अंग्रेजी की गोद में पले हैं, वे अपनी भाषा जानते नहीं। वे अपने अंग्रेजी अभ्यास के लाभ का मोह नहीं छोड़ना चाहते।"

नायर ने चुनौती दी—"काफी हाउस में भाषा की समस्या तुम चाहे जैसे हल कर लो परन्तु भाषा का प्रश्न तो दिल्ली की लोक-सभा में तय होगा। वहां सब अंग्रेजी जानते हैं। देश की भाषा का प्रश्न अशिक्षित और अर्ध-शिक्षित लोगों के निर्णय से नहीं हो सकता। उस में आप का प्रजातन्त्र नहीं चल सकता।"

देव ने विरोध किया—"जरूर चल सकना चाहिये और चल सकता है।

[illegible]

[illegible] वैज्ञानिक और [illegible]

[illegible] भाषाओं में आधुनिक विज्ञान, [illegible] और [illegible] के प्रयोजन [illegible] योग्य शब्द और साहित्य [illegible] अविकसित भाषा के विकास [illegible] वंचित कर देना है। हमारे लिये [illegible] हो सकती है। हम तो [illegible] देश में अंग्रेजी को [illegible] में अनिवार्य कर दिया जाये।"

देव ने प्रश्न किया—"आप के विचार में देश के केवल वही लोग आधुनिक विकास के सम्पर्क में आ सकते हैं जो अंग्रेजी जानते हों। सभी लोगों के लिये ज्ञान और संस्कृति को सुलभ बनाना है तो पूरे भारत की प्रजा को अंग्रेजी का आप की तरह अधकचरा ज्ञान नहीं, बल्कि समुचित ज्ञान होना चाहिये।"

बनर्जी चिढ़ गया—"हमारा ज्ञान अधकचरा है; तुम को बहुत अंग्रेजी आती है ?"

देव ने उत्तर दिया—"हम ने एम० ए० तक अंग्रेजी में ही पढ़ा है और अभी तक अच्छी अंग्रेजी सीख लेने का विश्वास नहीं है। अंग्रेजी साहित्य का भारतीय भाषाओं में अच्छे से अच्छा अनुवाद करने वाले आप को सैकड़ों की संख्या में मिल सकते हैं। भारतीय साहित्य का अंग्रेजी में अच्छा अनुवाद करने के लिये सिर पटक कर रह जाते हैं। डेढ़ सौ वर्ष में हम इतनी ही अंग्रेजी सीख सके हैं।"

तिवारी बीच में बोल पड़ा—"जिन्हें विज्ञान या विशेष विषयों के अध्ययन

के लिये अंग्रेजी ज्ञान की आवश्यकता है, उन्हें अंग्रेजी अच्छी तरह से पढ़ाइये। जिन लोगों को मैट्रिक पास करके रेलवे, पुलिस, सेक्रेटेरियट में नौकरी करनी है, दूसरे व्यवसायों में काम करना है, उन का दिमाग अंग्रेजी के बोझ से खराब करने की क्या जरूरत है? उन्हें अपनी भाषा ही अच्छी तरह सीख लेने दीजिये। सर्वसाधारण को अनिवार्य रूप से विदेशी भाषा सिखाने के लिये इतना समय, धन और शक्ति नष्ट करने की क्या आवश्यकता है?"

देव ने तिवारी की बात अनसुनी कर बनर्जी की बांह पकड़ ली—"अच्छा मित्र बताओ, जब मजे में गुनगुनाते हो तो बंगला में गाते हो या अंग्रेजी में?"

बनर्जी ने कहा—"यह बात दूसरी है।"

देव ने बनर्जी की ओर तर्जनी उठायी—"बात दूसरी नहीं, बात यह है कि अंग्रेजी हमारे लिये स्वाभाविक नहीं बन गयी। अंग्रेजी सिर्फ जुबान पर है, तोते की तरह रट कर बोलते हैं। यह बताओ, तुमने सोलह वर्ष अंग्रेजी भाषा सीखने में लगा दिये। अंग्रेजी आखिर एक भाषा ही है न। अंग्रेजी बोलचाल लेने से ही आदमी विद्वान और वैज्ञानिक नहीं हो जाता। हम ने लन्दन में जूता पालिश करने वाले और सड़क बुहारने वाले को भी अंग्रेजी बोलते देखा है। वे सब वैज्ञानिक, दार्शनिक और कलाकार नहीं होते। मित्र, तुमने सोलह बरस केवल अंग्रेजी सीखने में ही व्यय न करके अपनी भाषा में विज्ञान, दर्शन और कला सीखने में खर्च किये होते तो अधिक गहरे और उपयोगी व्यक्ति बन सकते थे।"

बनर्जी और शुक्ला एक साथ बोल पड़े—"अंग्रेजी न सीखे होते तो और भी मूर्ख होते। भारतीय भाषाओं में सोलह बरस तक पढ़ने योग्य है ही क्या? विज्ञान, संस्कृति और कला की बात जैसे आप अंग्रेजी में सुविधा से कह सकते हैं, भारतीय भाषाओं में कह ही नहीं सकते।"

तर्णी बोला—"अपनी भाषा में आप इसलिये नहीं कह सकते कि आपने उन बातों को बिना समझे तोते की तरह अंग्रेजी में रट लिया है, हृदयंगम नहीं किया। यदि भाव और अनुभूति हो तो शब्द अपने आप मिल जाते हैं।"

तिवारी बोला—"जब आप ऐसी आवश्यकताओं के लिये अपनी भाषाओं का प्रयोग ही न करें तो उन में इस प्रकार का ज्ञान कहां मिलेगा! भविष्य में भी आप ऐसे प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी पर ही निर्भर करने की नीति रखेंगे तो हमारी भाषायें हमारे अपने ही दोष से अविकसित रहेंगी। आप अपनी

भाषाओं को आने वाली पीढ़ियों के लिये भी अयोग्य बनाये रखने की नीति पर चल रहे हैं।"

तप्पी ने तिवारी की बांह पर हाथ रख, उसे चुप करा कर बनर्जी और शुक्ला से पूछा—"आप का ख्याल है, इस देश के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिये सब लोगों का अंग्रेजी सीख लेना आवश्यक है ?"

बनर्जी ने मेज पर हाथ मारा—"निश्चय ! अविकसित भाषाओं के मोह की अपेक्षा मनुष्य के मस्तिष्क का विकास अधिक महत्वपूर्ण है।"

तप्पी बोल पड़ा—"ठीक है, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेज अपने शासन की शक्ति और अधिकार से इस पूरे देश में दो प्रतिशत से अधिक लोगों को भी अंग्रेजी नहीं सिखा सके। साधारण गणित से अंग्रेजी को ही देश के वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास का साधन मानने वाले, इस देश की शत-प्रतिशत जनता को वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के योग्य ७५०० वर्षों में ही कर सकेंगे।"

देव ने बनर्जी की ओर देखा—"यह तो राष्ट्र के विकास की बहुत लम्बी योजना हो गयी। शायद इस से बहुत कम समय में वैज्ञानिक और सांस्कृतिक ज्ञान को अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में प्राप्य किया जा सकता है। अंग्रेजी तोता न बनना पड़ेगा, भारतीय ही रह सकेंगे।"

चिड़िया बोली

गली में उस दिन मुंह अंधेरे ही कलह का कोहराम मच गया था। सबसे पहले गली की चाची, सिन्हा बाबू की बबुआइन का चीत्कार सुनाई दिया। वह गरज-गरज कर शाप देने लगीं—गली के मोहरे पर जादू-टोना करने वालों के बाल-बच्चे मरें। अपनी बला दूसरों के सिर टालने वाले निरवंश हो जायें। ऐसी सीख देने वालों का वंश डूबे।

करमचंद के गोद के लड़के मिहन्दर (महेन्द्र) को सूखे का रोग था। मिहन्दर की माँ ने चाची की गाली का लक्ष्य अपने प्रति समझ लिया। वह अपने दरवाजे से गरजी—"गाली देने वाली रांड अपने खसम को खाये। बच्चों को खाये · · · "

गली की बुआ, मुन्शी जी की बड़ी बहिन की झाड़-फूंक और टोने-टटके के ज्ञान के बारे में ख्याति है। उन्हें संदेह हुआ कि गाली उन्हें भी लक्ष्य की गई थी। बुआ भी अपने चबूतरे पर आ गई और व्यंजना से गाली देने वालों को ललकार कर मिहन्दर की माँ की सहायता में मोर्चा ले लिया।

प्रौढ़ पुरोहित जी ने शान्ति के लिये समझाया—"शान्त रहो, शान्ति करो पर ऐसा काम बुरा है। हमने खुद देखा है। गली के मुहाने पर फूल पड़े हैं, मिठाई, मौली (कलावा) पड़ी है, जल चढ़ाया हुआ है। हम तो बच कर निकल आये पर लड़के-बाले क्या समझते हैं! जन्तर-मंतर, टोना-टटका करना हो तो गली-पड़ोस का तो ध्यान रखना चाहिये। क्या नाम कहते हैं; डायन भी सात घर छोड़ देती है।"

रामसहाय 'आर्य' ने समझा, पुरोहित जी अपनी पोप लीला फैला रहे हैं। उसने बहुत ऊँची पुकार से उपदेश दिया—"देवियो और भद्र पुरुषो, यह सब पोप लीला है। मिथ्याविश्वास है, कुसंस्कार है। इससे किसी का कुछ नहीं बिगड़ता।"

मिहन्दर की मां बहुत बढ़ कर बोल रही थी। सिन्हा साहब के बेटे महेश ने उसे डांट दिया।

कर्मचन्द यह कैसे सह जाता! उसने महेश को दो झांपड़ दे दिये—"तुम्हारी जवान चलती है तो हमारे हाथ चलते हैं।"

झगड़ा स्त्रियों से मर्दों में पहुँच गया। मुंशी जी ने धमकाया—"यह क्या बत्तमीजी है? हाथ चलाने का क्या मतलब? सिन्हा बाबू, आप पुलिस में रिपोर्ट लिखाइये, हम मिश्र जी से भी कहते हैं।"

मिश्र जी स्नान-पूजा से शीघ्र निवृत्त हो जाना चाहते थे। श्री 'मां' एक्सप्रेस से कलकत्ता जा रही थीं। विलम्ब हो जाने से दर्शनाभिलाषी भीड़ में पीछे रह जाते। गली से कभी कर्मचन्द, कभी मुंशी जी और सिन्हा बाबू उन्हें पंचायत के लिये पुकार लेते थे।

मिश्र जी बार-बार झल्ला रहे थे—"कैसे मूर्ख, जाहिलों से पाला पड़ा है। टोने-टटके में क्या रखा है? कैसा अंधविश्वास है, राम-राम! भगवान इन्हें सुमति दे।" उसी सांस में पुकार लिया, "मुन्नी बेटी, जानती हो हमें तुरंत स्टेशन जाना है। हमारे लिये कपड़े निकाल दिये हैं? जल्दी करो। रजिस्ट्रार साहब की गाड़ी आ गई तो........"

मुन्नी पुकार सुन कर पूछने आ गई थी बोली—"बाबा, आप नाश्ता कर लें तभी तो कपड़े पहनियेगा!"

मिश्र जी ने हाथ हिला दिया—"ना ना, नाश्ते-वाश्ते के लिये समय नहीं है। हम लौट कर भात खा लेंगे।"

मुन्नी ने आग्रह किया—"नहीं बाबा, खाली पेट नहीं जाने देंगे। आप समय पर नहीं खाते हैं तो कष्ट हो जाता है।"

मिश्र जी ने बेटी की बुद्धि पर विस्मय प्रकट किया—"क्या कहती हो बेटी? श्री 'मां' का तो दर्शन ही कष्टमोचन है। वे करुणा दृष्टि कर दें तो रोग-संताप मिट जायें। मां के ऐसे सैकड़ों चमत्कार प्रसिद्ध हैं। उनकी कृपा-दृष्टि हो जाय तो हमारा पेट का कष्ट भी दूर हो जाये। औषध तो सब करा चुके।"

मुन्नी ने पूछ लिया—"बाबा, रोग यदि कर्म का फल है तो कोई उसे कैसे काट देगा?"

तप्पी ने कहा—"जो तथ्य की कसौटी से प्रमाणित नहीं, वह केवल विश्वास

ही है। कर्म-फल भी विश्वास ही है। विश्वास के ही बल पर चलना है तो बाबा, चौराहा पूज कर ही उपचार कर लेना सब से आसान है ।"

मिश्र जी को बुरा लगा। उन्होंने टोक दिया—"तुम्हें अंध-विश्वास ही दीखता है। श्री 'मा' को इतने लोग यों ही मानते हैं ! आप यदि जादू-टोने और झाड़-फूंक के विश्वास के सम्बन्ध में वोट लें तो निश्चय ही देश का बहुमत उस विश्वास के पक्ष में होगा पर हम उस पर कैसे विश्वास कर लें।"

मिश्र जी को तप्पी का तर्क अच्छा नहीं लगा। उन्होंने समझाया—"बेटे, तुम तो अपढ़ जाहिल लोगों की बात कर रहे हो। मा के भक्त ऐसे लोग नहीं हैं। बड़े-बड़े कमिश्नर, प्रोफेसर, एस० पी०, डी० एम० उन पर श्रद्धा रखते हैं। उन लोगों में तुम से कम समझ नहीं है। तुम स्टेशन पर चल कर देख लो न !"

तप्पी बोलने लगा था तो और भी कह गया—"मौसा जी, यों तो अजमेर शरीफ, अमृतसर के दरबार साहिब, आगरा के दयालबाग में जाने वालों में आपको कमिश्नर, जज, एस० पी०, प्रोफेसर भी मिल जायेंगे। आप अजमेर शरीफ और गुरुद्वारे में विश्वास कर लेने के लिये तैयार नहीं हैं।"

मिश्र जी कुछ झुंझला गये—"अरे तुम न विश्वास करो पर जो करते हैं उन के लिये तो है। विश्वास के बिना दुनिया में होता क्या है ?"

तप्पी ने नम्रता से कह दिया—"लोगों के विश्वास तो भिन्न-भिन्न हैं। विश्वास परस्पर-विरोधी भी हैं। क्या भगवान के सम्बन्ध में सभी परस्पर-विरोधी धारणायें और विश्वास सत्य हो सकते हैं ?"

मिश्र जी सचमुच झल्ला गये—"अरे सत्य कहीं तर्क से मिलता है। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ......"

दरवाजे पर सिन्हा बाबू दिखाई दिये, उन्होंने पुकार लिया—"मिश्र जी, आप माता जी के दर्शन के लिये जा रहे हैं, हम भी आप के साथ दर्शन पा लेते। हम रिटायर हुए हैं तब से मन बहुत अशान्त रहता है।"

सिन्हा साहब बोल रहे थे तो मुन्नी भी कहती जा रही थी—"भावना में ही भगवान को बनाना है तो चाहे जिसे भगवान बना दो, चाहे जैसे भगवान बना लो। चाहे पीपल को भगवान और रक्षक मान लो चाहे पीर की कब्र को।"

"लाखों लोग मानते ही हैं और उन्हें उससे सान्त्वना भी मिलती है।" तप्पी ने समर्थन कर दिया।

[illegible]

[illegible]

मुन्नी ने सिन्हा बाबू से पूछ लिया—"मामा जी, [illegible] सुना है [illegible] बस [illegible] बोल दिया।"

सिन्हा बाबू ने मुन्नी को समझाया—"ऐसी [illegible] सिद्धों को पुकारने-बोलने की आवश्यकता नहीं होती। वे तो अन्तर्यामी होते हैं। माता जी तो सैकड़ों मील दूर बैठे लोगों को दर्शन दे देती है। [illegible], कलकत्ते में हो और काशी जाना हो तो जिसके यहां जाकर ठहरना चाहोगी उसे अपने आप पता लग जायेगा। न चिट्ठी, न तार, न टेलीफोन। क्या समझे !"

"तुम साइंटिस्ट हो, साइंस ऐसा कर सकती है क्या ?" सिन्हा बाबू ने तप्पी को चुनौती दी।

"साइंस ! हां जरूर कर रही है।" तप्पी ने गर्दन ऊंची करके हामी भर ली, "ब्रह्मलीन सिद्ध लोग अपनी सिद्धि से अपने ही विचार ट्रान्समिट (प्रसारित) कर सकते है। वे सिद्धि से केवल अपने में शक्ति उत्पन्न कर लेते होंगे। सिद्धों का आध्यात्मिक टेलीफोन केवल उनके निजी उपयोग में आ सकता है। ऐसे सिद्ध करोड़ों लोगों में से एक-आध होंगे। सिद्धों के सन्देश को भी विरले भक्त ही पा सकते हैं। ऐसी सिद्धि के लिये आधे जीवन की तपस्या दरकार होगी या उसे अवतार पुरुष होना चाहिये। साइंस ने पिछले चालीस वर्षों में रेडियो का कितना विकास कर दिया है। जो चाहे घर बैठे न्यूयार्क, लन्दन और मास्को में कही जाती बातें सुन लें। अब तो वैज्ञानिकों ने टेलीविजन भी बना दिया हैं। घर बैठे-बैठे टेलीविजन पर अमरनाथ, बद्रीधाम, कामाक्षा और रामेश्वरम् के मन्दिरों की पूजा और क्रिकेट का टेस्ट मैच समान रूप से देखा कीजियेगा। कलकत्ते में बैठ कर अपनी बात काशी में कह देना कौन

बड़ी बात है। सैंकड़ों सटोरिये कानपुर, काशी मे बैठे फोन पर कलकत्ता, बम्बई मे लिया-बेचा किया करते हैं। ब्रह्मलीन सिद्ध तो अपनी तपस्या की सिद्धि का उपयोग स्वय ही कर सकते हैं। वैज्ञानिकों की तपस्या मे प्राप्त सिद्धि का उपयोग सम्पूर्ण ससार करता है। सिद्ध की भभूत तो सिद्ध के हाथ से ही शफा देती है परन्तु वैज्ञानिक के नुसखे की गोली सब के हाथ से सब जगह दर्द दूर कर देती है। माता जी की सिद्धि से कितनो को लाभ हो सकता है।"

तप्पी अन्तिम शब्द कह रहा था तो रजिस्ट्रार साहब की बड़ी लड़की किरण बैठक मे आ गयी। तप्पी उसके आदर मे खडा हो गया परन्तु मुह की बात उसने कह ही डाली।

किरण मुन्नी के पास तख्त पर बैठ गयी और पूछ लिया—"माता जी की बात हो रही है? बाबा अभी तैयार नही हुए? गाड़ी बाहर खड़ी है पर एक्सप्रेस तो लेट है।"

मुन्नी ने उत्तर दिया—"बाबा अभी आते हैं। एक्सप्रेस लेट है तो क्या जल्दी है? किरण दीदी, आप भी माता जी के दर्शन के लिये जा रही है?"

"ना बाबा, हमने तो पन्द्रह बरस पहले ही माता जी के दर्शन करके गाली खायी थी" किरण ने कह दिया।

"वह कैसे?" तप्पी ने उत्सुकता से पूछ लिया।

"अरे, हम लोग तब देहरादून मे रहते थे। माता जी वहा बहुत दिन रही थी। पापा तो, आप लोग जानते है, परम भक्त हैं न! भक्तो का ख्याल है कि माता जी को सगीत मे बहुत रुचि है। मैं घर पर सितार सीखती थी। एक दिन पापा माता जी की प्रसन्नता के लिये मुझे उन के सामने सितार बजाने के लिये ले गये। मुझे सब से आगे, माता जी के समीप बैठा कर सितार दे दी गई। मैं झेंप के मारे गड़ी जा रही थी। सिर झुकाये जैसा बना, बजा दिया। गत समाप्त हुई तो माता जी ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया। लोगों की नजरो मे मैं महासौभाग्यशालिनी बन गयी।

"मैं गत समाप्त करके उठी तो माता जी ने शून्य मे देखा और गम्भीर हो गयी। सहसा बोल पड़ीं—आ रहा है, आ रहा है! इजन आ रहा है। बीच मे आग है। लाल आग। ध्वस करेगा।"

"भक्त लोग माता जी के सत्सग मे लौट रहे थे तो एक भक्त बोले—भाई, माता जी को सगीत का गहरा ज्ञान है। सितार बज रही थी तो गत पर

कैसे झूम रही थी !

"मैं नादान तो थी ही, कह दिया—संगीत का ज्ञान माता जी को खाक नहीं है। मैं तो बेसुरी बजा रही थी। संगत के लिये तबला भी नहीं था।

"पापा ने मुझे डांट दिया—क्या बकती हो, सन्त-महात्माओं के लिये ऐसा कहा जाता है !

"सत्संगी लोग माता जी के मुख से अनायास निकली वाणी की व्याख्या करने लगे। एक चिन्ता से बोले—माता जी का संकेत है, साम्प्रदायिक द्वेष अभी बढ़ेगा। उस से ध्वंस होगा।

"हमारे पीछे आते व्यापारी भक्त की बात कान में पड़ी—समझे ! कहा है लाख का सौदा नहीं करना। दिवाला निकल जायेगा।

"उन दिनों पापा का सीनियर अंग्रेज अफसर कुछ बिगड़ा हुआ था। घर पहुंच कर पापा अपने मित्र से बोले—हम ने माता जी का संकेत समझ लिया है। हमें सावधान रहने के लिये चेतावनी दी है। लाल मुंह वाले से झगड़ा ठीक नहीं, ध्वंस कर देगा। हां भाई, उस के हाथ में ताकत है, सब कुछ कर सकता है।"

तप्पी जोर से हंस पड़ा—"यह तो वही बात हुई—चिड़िया कुछ बोली। फकीर ने समझा, चिड़िया कहती है—सुभान तेरी कुदरत। पहलवान ने समझा—दंड, बैठक, कसरत। कुंजड़े ने समझा—मिर्चा, धनिया, अदरक। अपने विश्वास से जो जैसा चाहे समझ ले, चिड़िया तो कुछ भी नहीं कहती। आध्यात्मिक वाणियों के अर्थ ऐसे ही लगाये जाते हैं।"

परायी वला

तप्पी ने काफी-चौपाल के दरवाजे पर कदम रखा ।

"आओ, आओ ।" यह जहीर और सुरेश ने उसे पुकार लिया ।

तप्पी स्वागत के लिये धन्यवाद में मुस्करा न सका, न उस ने जहीर को बहस के लिये दावत स्वीकार की । मुंह लटकाये कुर्सी खींच कर बैठ गया । जहीर ने उस की उदासी को लक्ष्य न कर पूछ लिया—"भाई वाजपेयी, तुम बताओ यूनिवर्सिटी में ओटोनामी न रही, कोई प्रेस्टीज न रहा तो यूनिवर्सिटी क्या हुयी, तब तो यूनिवर्सिटी सरकारी प्राइमरी स्कूल बन जायगी ।"

तप्पी चुप रहा ।

"क्यों कहीं से मार खाकर आये हो ! क्या बात है ?" जहीर ने तप्पी के मौन पर छींटा कसा ।

तप्पी ने निरुत्साह से सिर हिला कर स्वीकार कर लिया—"सचमुच मार खाई है भाई !"

जहीर के कंधे तन गये—"क्या कहते हो ? किस कमबख्त ने ऐसी हिम्मत की ?" उस ने आस्तीनें चढ़ा लीं, "कहां है ? चलो, जरा बताओ तो !"

तप्पी ने उसे शांत रहने का इशारा किया—"किसी एक से नहीं, पूरी पब्लिक से मार खाई है । किस-किस से झगड़ोगे ? कौन जाने, सुनो तो तुम्हारी भी राय बदल जाये" ... ।"

तप्पी ने संक्षेप में बताया—वह बस में था । पुल के पास चार नौजवान विद्यार्थी बस में आ गये । नवयुवक बैठने के बजाय खड़े ही रहे । वे आपसी दिल्लगी में एक दूसरे को थपतिया रहे थे । खड़े मुसाफिरों को सहारा देने के लिये बस की छत से चमड़े के पट्टे लटके रहते हैं । एक पट्टे का जोड़ आधा उधड़ कर कच्चा हो गया था । एक छोकरे ने मर्दानगी के जोश में पट्टे को झटक

नही समझते । आप पब्लिक के नुकसान की फिक्र मे खामुखा सिरदर्दी मोल लें और पब्लिक को दुश्मन बनायें ।"

सुरेश ने भी असन्तोष प्रकट किया—"पब्लिक की चोरी और पब्लिक का नुकसान तो लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार समझ कर शेखी से करते है। देखा नही, रेलो मे सेकेण्ड और फर्स्ट के गुसलखाने मे स्विच या आई ने पर क्या लिखा रहता है—'रेलवे से चुराया हुआ माल' लेकिन चोरी इस पर भी बन्द नही होती। लोग पूरी सीट का रेक्सीन काट कर ले जाते हैं, जो मिलता है ले जाते हैं। न ले जा सके तो कम से कम तोड ही जाते हैं। सरकार का नुकसान कर बहुत संतोष अनुभव करते हैं।"

बैनर्जी ने भी कहा—"होली के बाद शहर की बसो और रेलो की हालत देखिये ! सब कुछ रग और कीचड से गदा हो जाता है। आपके अच्छे कपड़े पर रग पड जाये तो आप कपड़े बिगाडने वाले की जान खा जायेंगे। आते-जाते भले लोग भी आपसे सहानुभूति प्रकट करेंगे। पब्लिक या सरकारी चीज को बिगाड देने पर देखने वाले कुछ नही बोलेंगे। उसे परायी बला समझेंगे।"

सुरेश उचक पडा—"सरकार के विरुद्ध असंतोष प्रकट करना हो तो सबसे आसान काम पब्लिक प्रापर्टी या सरकारी माल का नुकसान कर देना है। याद नही, उस साल स्टूडेंट्स पुलिस से भिड गये ! बसें जला दी, हमारी सडक का डाकखाना फूंक दिया। शहर के आवारा लोग इस वीरता में सबसे आगे हो गये। भुगतना पड़ा हम लोगो को। तीन महीने तक जनरल पोस्ट आफिस भागना पड़ा। बस मे दस पैसे देकर यहा आ जाते थे, उसकी जगह रिक्शा मे छः आने देते रहे।"

तप्पी ने उत्साहित होकर विद्रूप किया—"गुस्से में सरकारी या सार्वजनिक माल का नुकसान करना, गुस्से मे अपनी नाक काट लेना नही तो क्या है ? डाकखाने और बसें, मिनिस्टरो और सरकारी अफसरो की तनख्वाहें काट कर तो बनती नही। इस नुकसान से सरकार का क्या बिगडता है और सरकार है कौन—तुम और मैं। कल सुरेश भी चुनाव लड़ कर मिनिस्टर बन सकता है।"

देव ने सुझाया—"कारण यह है कि जनता मे विदेशी शासन के समय सरकार के प्रति जो विरोध भावना थी, वही मनोवृत्ति अभी तक चली आ रही है। तब प्रजा और सरकार मे विरोध भावना स्वाभाविक थी। सरकारी माल तब भी पब्लिक का था परन्तु प्रजा सरकारी माल नष्ट करके या चुरा कर

विदेशी सरकार को चोट पहुंचा सकने और परेशान करने का संतोष अनुभव करती थी। अब सरकारी सम्पत्ति, जनता की अपनी चीज है। अब सरकारी सार्वजनिक नुकसान जनता का अपना नुकसान है, परन्तु जनता में सरकार को अपना समझने की भावना नहीं आयी। अब जनता स्वयं सरकार बनाती है फिर भी उस को अपना नहीं समझ पाती।"

ज़हीर ने पूछा—"लोग कैसे मान लें कि सरकार उन की अपनी है। हमारी सरकार ने प्रजा का विश्वास पाया ही नहीं। प्रजा की सरकार से अब भी विरोध भावना चली आ रही है। सरकार का जनता से व्यवहार ही ऐसा है। जिस सरकारी महकमे—म्युनिसिपैल्टी, अदालत, अस्पताल, थाने या सेक्रेटेरियट में चले जाइये; आप को सहानुभूति नहीं, हुकूमत और नोच-खसोट की प्रवृत्ति मिलेगी। रिश्वत दिये बिना काम नहीं चलेगा।"

के० लाल कारोबारी आदमी हैं, बोल पड़ा—"बिल्कुल ठीक है। जितने वैगन बुक करने हों, रेलवे के चार्जेज के अतिरिक्त प्रति वैगन एक हरा नोट दीजिये।"

कपूर रेलवे में है, उस ने विरोध किया—"रिश्वत क्या रेलवे में ही देनी पड़ती है? म्युनिसिपल कमेटी में जाइये, अदालत में जाइये, बिना लिये कौन आप की बात सुनता है? साइकिल का लाइसेंस ही लेना हो तो या तो खड़े-खड़े दिन खराब कीजिये या क्लर्क को पान-सिगरेट के लिये कुछ देकर काम करवा लीजिये।"

के० लाल हंस पड़ा—"ठीक कहते हो भैया, सब सरकारी महकमों में जहां जनता से सम्पर्क पड़ता है, सरकारी नौकर रिश्वत को दस्तूर और ऊपर की आमदनी समझते है।

कपूर ने लाल की बात को फिर रेलवे पर लांछन समझा और झुंझला उठा—"तुम रेलवे वालों को ही गालियां देते हो? रेलवे में तनखाह ही क्या मिलती है? रेलवे वालों को भी दूसरी जगह देना पड़ता है। बाजार में ब्लैक मार्केटिंग के दाम नहीं देने पड़ते? वह अदालत में जाता है तो, हस्पताल या थाने में जाना पड़ जाये तो दिये बिना कहां काम चलता है?"

तिवारी जोर से हंस पड़ा—"सरकारी महकमों के कर्मचारियों में यह जेबकटी का मजेदार समझौता है—तुम हमारे यहां आओ तो हमें दो, हम तुम्हारे यहां आयें तो हम से ले लो। सभी महकमों के सरकारी नौकर

अपनी-अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस चलाते है। वे समझते है कि तनख्वाह उन्हे केवल सरकारी काम के लिये ही मिलती है। जनता का काम वे सरकारी काम नही समझते। जनता के काम के लिये वे जो श्रम करते हैं, उस के लिये फीस चाहते हैं।"

के० लाल ने कहा—"सब लोग तो सरकारी नौकर नही है, न सबके लिये प्राइवेट प्रैक्टिस और ऊपर की आमदनी का अवसर है। इस चक्कर में जनता तो मारी जाती है।"

कपूर ने विद्रूप किया—"जी हा, ब्लैक मार्केट करने वाले, चीनी, चावल, घी मे मिलावट करके लोगो मे बीमारी फैलाने वाले, नकली दवाइया बेच कर लोगो के प्राण लेने वाले खून-पसीने की कमाई खाते है! वे ऊपर की आमदनी या प्राइवेट प्रैक्टिस नही करते! वे निरीह जनता हैं। उन्ही की जेब कटती है। वही तो असल मे रियायत पाने और अनुचित लाभ के लिये सरकारी नौकरों को लालच मे भ्रष्ट करते हैं। सब से पहले उन्हीं को फासी दी जानी चाहिये।"

के० लाल जोर से हंस पडा—"चोरबाजारी या माल मे मिलावट करने वाले को फासी कौन देगा? उसे कौन पकडेगा? वही सरकारी नौकर जो चोरबाजारी और मिलावट करने वाले से मिलने वाली ऊपर की आमदनी पर चैन करता है?"

देव ने कहा—"सकट तो यही है कि आप सरकारी नौकर को सरकार समझ लेते है लेकिन सरकारी नौकर सरकार नही होता। वह अपने महकमे में कुर्सी पर बैठा हो तो सरकार होता है परन्तु दूसरे महकमे मे काम पड़ने पर जनता बन जाता है। सरकारी नौकर आठ घटे सरकार होता है और सोलह घटे जनता। जब सरकारी नौकर नित्य जीवन मे परेशान होता है तो सरकार से असंतोष अनुभव करता है। रिश्वत देकर अपना काम चलाने वाला दूसरे क्षेत्रो में परेशान होता है तो सरकार से असतोष अनुभव करता है। घी, चीनी, मैदे मे मिलावट करने वाला जब धोखे मे नकली दवाई खरीदता है तो सरकार से असतोष अनुभव करता है। अव्यवस्था, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक हानि से व्यक्तिगत परेशानी सब अनुभव करते हैं और अव्यवस्था, भ्रष्टाचार को बढ़ाने मे सहयोग देते हैं।"

जहीर ने विस्मय प्रकट किया—"अव्यवस्था और भ्रष्टाचार बढ़ाने मे लोग

सहयोग कैसे देते हैं ? सर्वसाधारण पर आप यह इलजाम कैसे लगा सकते हैं ? वही वेचारे तो भुगतते हैं।"

तप्पी ने ज़हीर को उत्तर दिया—"तुम्हीं ने कहा था कि पब्लिक के नुकसान की फिक्र में सिरदर्द लो और पब्लिक को दुश्मन बना लो। सार्वजनिक नुकसान को देख कर न बोलने का मतलब ऐसा नुकसान करने वालों का हौसला बढ़ाना है या नहीं ? तुम समझते हो सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना सरकार का काम है, जनता अपने नुकसान की उपेक्षा कर सकती है। सरकार आखिर है कौन ? व्यवस्था को चालू रखने के लिये नियत किये गये कुछ लोग ही तो सरकार हैं। उन की गिनती कितनी है ? नुकसान करने वाला जनता में से है। जनता उपेक्षा से उस की सहायता करेगी तो सरकार कर ही क्या सकती है ? एक ओर जनता हो और दूसरी ओर सरकार और सरकार का प्रत्येक व्यक्ति भी जनता हो तो जनता को हानि पहुंचाने की लड़ाई में सरकार जीतेगी या जनता और जनता की ऐसी जीत का अर्थ आत्म-हत्या होगा या नहीं !"

कपूर ने भी समर्थन किया—"सिद्धांत रूप से तो यह बात ठीक है कि किसी भी गैरकानूनी काम के परिणाम से अन्ततः अधिकांश जनता का ही नुकसान होगा।" और शंका प्रकट कर दी, "परन्तु व्यवहारिक रूप से जनता क्या कर सकती है ? क्या जनता सरकार के कामों में हस्ताक्षेप किया करे ?"

देव ने उत्तर दिया—"हस्ताक्षेप का अर्थ तो विरोध के लिये अड़ंगा डालना होता है। आधी रात में आप को संदेह हो जाये कि पड़ोसी के घर में सेंध लगाई जा रही है। उस समय उन्हें चेतावनी देना हस्ताक्षेप नहीं कहा जायेगा। पड़ोसी से हमारा सद्भावना का नाता होता है परन्तु सार्वजनिक हित, सार्वजनिक सम्पत्ति और व्यवस्था की रक्षा से हम सब का व्यक्तिगत नाता और सम्पर्क है। सार्वजनिक हानि करने वालों के निर्भय हो जाने और व्यवस्था में ढिलाई आ जाने से सब भले आदमियों की व्यक्तिगत सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिये खतरा बढ़ता है। ऐसी स्थिति का फायदा केवल चोरी-चकारी और धांधली के लिये तैयार रहने वाले ही उठा सकते हैं। सार्वजनिक हित को परायी बला समझना अपने लिये भय उत्पन्न करना है।"

तप्पी बोला—"सार्वजनिक सम्पत्ति और व्यवस्था की रक्षा में सहयोग को हस्ताक्षेप समझ लेने का अर्थ है कि सरकार या शासन व्यवस्था से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि शासन व्यवस्था के प्रति हमारा कोई उत्तरदायित्व

नहीं तो व्यवस्था पर हमारा कोई अधिकार भी नहीं। तब हम शिकायत ही क्या कर सकते हैं ?"

जहीर ने विस्मय प्रकट किया—"हमारा अधिकार क्यों नहीं ? सार्वजनिक सुविधाओं और सुव्यवस्था के लिये लाखों रुपया कौन दे रहा है ? क्या जनता नहीं दे रही ? हम एक पान खाते हैं, एक सिगरेट पीते है, रोटी का एक कौर खाते है तो हर बात मे सरकार और व्यवस्था चलाने के लिये कर के रूप मे खर्चा देते है, तब भी हमें अव्यवस्था के लिये शिकायत करने का अधिकार नहीं ?"

देव ने उत्तेजना में मेज पर हाथ मारा—"हमे तो लगता है कि आजकल प्रत्येक व्यक्ति अपने ऊपर जो कुछ खर्च करता है, उस का तिहाई, चौथाई सरकार के लिये चला जाता है। सरकार और व्यवस्था हमारे खून और पसीने से ही चल रही है। हम उस मे शिथिलता देख कर उपेक्षा कैसे कर सकते है ? इस उपेक्षा का अर्थ है, अपने अधिकार और सुरक्षा की उपेक्षा करना।"

तप्पी बोला—"आप सरकार के प्रति उत्तरदायित्व और सरकार से अधिकार की बात कर रहे है, परन्तु सरकार है क्या ? सरकार शब्द से पुरानी ध्वनि या भावना तो भय की और किसी के आधीन रहने की है। निरंकुश सामन्तो और राजाओ के जमाने मे सरकार जनता और देश की स्वेच्छाचारी मालिक होती थी। उस सरकार से डरने और उस की खुशामद के सिवा कोई चारा न था। अंग्रेजी सरकार का रूप और व्यवहार भी हमारे लिये वैसा ही था परन्तु आज सरकार क्या है ? आप सरकार खुद बनाते हैं। यदि आप सार्वजनिक हित को अपना ही हित और कर्त्तव्य समझें और उसकी उपेक्षा न करें तो आप जैसी चाहे सरकार बना सकते है ।"

जहीर ने विद्रूप कर दिया—"जी हा, पिछले चुनाव मे आपने क्या कर लिया ?"

तप्पी ने उत्तर दिया—"यदि सार्वजनिक हित और कर्तव्य की चेतना होती और उपेक्षा न करते तो जो आप उचित समझते कर सकते थे। जिन्हे आप स्वार्थी समझते हैं, वह तो सब कुछ कर सकते हैं। जो अपने आपको निस्वार्थ समझते हैं, वे सार्वजनिक हित की उपेक्षा करते है। ऐसे कर्तव्य की उपेक्षा तो आत्मघाती स्वार्थ है। आप कुछ नहीं करना चाहते क्योंकि उसमें अपना स्वार्थ नहीं समझते, उसे परायी बला समझते हैं।"

जहीर चमक कर बोल पड़ा—"हम लोग केवल सार्वजनिक हित की ही

[illegible] अपने हित के लिये कुछ करने में दूसरों का भी भला होने की सम्भावना [illegible] और [illegible] हो जाते हैं। इसी से सरकारी [illegible] हो जाती है, [illegible] भी कम है परन्तु यह सोच कर कि दूसरों को भी लाभ है, [illegible] हो जाते हैं। यही प्रवृत्ति राज-नीतिक क्षेत्र में काम करती है। ऐसी [illegible] में आप सार्वजनिक हित की बात आना नहीं ?

"आप को अपने हित के लिये आवाज उठाने का और सरकार बनाने में भाग लेने का अधिकार है। आप यही चेतना जगाने में सहयोग क्यों नहीं देते, इसलिये कि इसमें आप अपना स्वार्थ नहीं समझते! बाद में शिकायत कर लेने का संतोष चाहते हैं! विदेशी शासन हम लोगों में शिकायत करके संतोष पा लेने की अजीब आदत छोड़ गया है। हमारा सामाजिक व्यवहार तो ग्वालों आशिकों जैसा है—'फिर दिल में मज़ा रहता, जब तमन्ना निकल गयी।'"

तप्पी फिर बोल पड़ा—"आप जानते हैं कि इस समय सुव्यवस्था और सार्वजनिक हित के प्रति जनता की उपेक्षा का परिणाम बहुत भयानक हो सकता है। देश की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये, जनता की असन्तोषजनक आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये सरकार को उत्पादन का समाजवादी ढंग अपनाना पड़ रहा है और महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धों को पब्लिक सैक्टर (सार्व-जनिक नियंत्रण) में लेना पड़ रहा है। उस अवस्था में यदि हमारी जनता का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी रहा या जनता सार्वजनिक प्रश्न या हित को परायी बला समझती रही तो असफलता की जिम्मेवारी किस पर होगी? व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हमारी राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं को, समाजवाद को कैसे सफल होने देगा!"

कपूर बोल उठा—"क्यों, सरकार उत्पादन पर अपना नियंत्रण कायम करेगी तो उस की सफलता-असफलता के लिये जिम्मेवार भी होगी।"

तप्पी झुंझला उठा—"सरकार है कौन? जनता सरकार नहीं है? सरकारी नौकर जनता नहीं हैं? यदि सब का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी होगा, जैसा आजकल है तो कोई भी सार्वजनिक हित से, अपने साथियों की शिथिलता से अपना वास्ता नहीं समझेगा, सार्वजनिक सम्पत्ति की हानि होती देखकर बोलना परायी बला सिर लेना समझेगा। आप ऐसा करेंगे तो सरकारी नौकर भी ऐसा करेंगे। वे दूसरों को उदाहरण मान कर जितना सम्भव होगा, श्रम से बचना चाहेंगे। अधिक

से अधिक तनख्वाह लेना चाहेंगे । दोनों बातों में जनता की हानि है । परिणाम क्या होगा ? सार्वजनिक हित, सब का राज या समाजवाद तो तभी सफल हो सकता है जब व्यक्ति समाज के हित में अपने हित समझे । जो व्यक्ति समाज और व्यवस्था की समस्याओं को परायी बला समझता है, वह वास्तव में अपराधी है ।"

×   ×   ×

सुरेश ने निराशा की उत्तेजना से अपनी बात सुनाने के लिये हाथ उठाकर एलान किया—"इस डेमोक्रेसी की न्याय-व्यवस्था में धांधली करने वालों को कोई बाधा और भय है ही नहीं, लोग स्वार्थ में अंधे हैं । मिनिस्टर और अफसर अपने स्वार्थ की बात सोचते हैं । ऊपर से बरसने वाला स्वार्थ और धांधली छन कर समाज के सभी स्तरों में उतरती चली जाती है । देश का भला तो केवल जबर्दस्त डिक्टेटरशिप से ही हो सकता है ।"

विष्णु सुरेश से भी अधिक निराशा से बोला—"इस वोट के राज्य में मेहतर तक की शिकायत कीजिये, कुछ नहीं हो सकता । जमादार मेहतर को क्या कहे, वह मेहतर से रिश्वत लेता है । हेल्थ-आफिसर जमादार को क्या कहे, वह खुद हरामखोरी करना चाहता है और अपने मातहत से नाजायज काम लेना चाहता है । डायरेक्टर के पास हेल्थ आफिसर की शिकायत कीजिये तो हेल्थ आफिसर का रिश्तेदार एम० एल० ए० होगा या वह किसी मिनिस्टर के साले का जमाई होगा ।

"भैया, खोंचे वालों को सड़क की थूक-मूत सनी धूल से भरे सौदे लोग-बाग को खिलाने का हक है क्योंकि वह ड्यूटी के कान्स्टेबिल और 'हेल्थ' के जमादार को दस्तूर में दुअन्नी देते हैं । रिक्शेवाला दुअन्नी की सलामी देता है तो उसे ट्रैफिक का रास्ता रोक सकने और एक्सीडेंट करने का हक हो जाता है । दुअन्नी-चवन्नी की रिश्वत के मोल अनेक लोगों के प्राण चले जाते हैं । प्रजातंत्र का मतलब ही धांधली की स्वतन्त्रता है । धांधली में बलिदान वही लोग हो रहे हैं, जिन्हें केवल अपनी मेहनत का भरोसा है और जो धोखा देने के अवसर का मोल नहीं दे सकते ।"

सुरेश फिर बोल पड़ा—"तुम वही बात कह रहे हो जो हम कह चुके हैं । धांधली वह रोक-टोक सकता है जो खुद निस्वार्थ हो और जिसे धांधली करने वालों को नाराजगी का भय न हो ।"

करेंगे। फर्क इतना होगा कि अब आप कानून की दुहाई दे सकते हैं, जनमत का भरोसा कर सकते हैं, तब सिपाही का हुक्म ही सब कुछ होगा। एतराज करेंगे तो गोली खायेंगे। सिपाही खुदा का फरिश्ता तो होता नहीं, आप ही के जात-बिरादरी का आदमी होता है। किसी का चाचा, किसी का भतीजा, किसी का बहनोई, किसी का साला, किसी का दोस्त तो किसी का दुश्मन भी। जो सरकारी नौकर करते हैं, सो वह करेगा और हमारे सीने पर बन्दूक रख कर करेगा। शक हो तो किसी भी डिक्टेटरशिप में जाकर देख आइये, बस इतनी ही राहत आप को डिक्टेटरशिप में मिलेगी।"

बनर्जी ने चिन्ता से पूछा—"और यदि मिलिटरी में भी दलबंदी हो गयी तो क्या होगा? प्रजातन्त्र में तो एक दल दूसरे दल से शासन अधिकार छीनना चाहता है तो वोटों से जंग होती है। सैनिक दलों में संघर्ष होगा तो फैसला तोप-तलवार से होगा। एक दल के आदमी हमारे मोहल्ले में आकर छिपेंगे तो दूसरा दल हमारे मोहल्ले पर गोलाबारी करेगा और सब धांधली का अन्त हो जायगा।"

तप्पी ने उस आतंक की आशंका का निवारण करने के लिये कहा—"प्रजातन्त्र में कोई भी सरकार पूर्ण निरंकुश और डिक्टेटर नहीं हो सकती क्योंकि शासन की अवधि का अंकुश उन पर रहता हैं, विरोधी दल उन की आलोचना कर सकता है। पूर्ण डिक्टेटरशिप तो तभी हो सकती हे जब अवधि और जनमत का अंकुश न रहे। सरकार पर अवधि का अंकुश, प्रजा को असंतोष प्रकट करने का और व्यवस्था में परिवर्तन और सुधार करने का अवसर देता है।"

देव ने समर्थन किया—"प्रजातन्त्र में यदि सरकार खराब है तो उसे सुधारने का अवसर तो प्रजा के हाथ में रहता है। प्रजा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा सकती है। मन्त्री स्वार्थी हो सकते हैं तो डिक्टेटर और राजा स्वार्थी, ऐयाश और बेइमान नहीं हो सकते? तुम्हीं बताओ, इतिहास में कितने निरंकुश शासक स्वार्थी और कितने परमार्थी हुए हैं? सरकार और शासन के निर्माण में कोई भी अधिकार न होने पर प्रजा क्या कर सकेगी? तब शायद संतोष इसी बात से होगा कि शिकायत का अवसर नहीं है।"

सुरेश ने फिर निराशा प्रकट की—"कौन करेगा सुधार? नया चुनाव आ रहा है। फिर स्वार्थी लोग चुनाव में आगे बढ़ जायेंगे। व्यक्ति बदल भी जायेंगे

तो धाधली की परम्परा तो नहीं बदल जायेगी ! हम तो ऐसे चुनावों के झंझट में नहीं पड़ते।"

"आप को अपने ऊपर विश्वास नहीं तो आप चुनावों को झंझट ही समझेंगे ?" तप्पी ने कहा।

देव बोल पड़ा—"अपने ऊपर विश्वास और भरोसा नहीं इसलिये डिक्टेटर का भरोसा करना चाहते हो ! डिक्टेटर का ही क्या भरोसा, भगवान का भरोसा करो !

"आप को सिर्फ शिकायत करने में मतलब है। पहिले धांधली का अवसर चाहने वालों को मौका दीजिये, फिर शिकायत कीजिये। चुनाव और व्यवस्था के निर्माण को परायी बला का झंझट समझना क्या स्वार्थ का दृष्टिकोण नहीं है ? समाज से अपना कोई सम्बन्ध न समझना ही सब से बड़ा स्वार्थ है।"

देव ने क्षोभ प्रकट किया—"मुसीबत है कि लोग सोचते ही व्यक्ति, बिरादरियों या जातियों के रूप में हैं। जब वोट बिरादरी के नाम पर, साम्प्रदायिक लिहाज-मुलाहजे की संकीर्ण और स्वार्थी भावना में दिये जायेंगे तो परिणाम क्या होगा ?"

तप्पी ने निराशा प्रकट की—"इस बार इलेक्शन में केवल सौ में तीस व्यक्तियों ने वोट दिये है, क्यों ? सौ में सत्तर व्यक्तियों ने परवाह क्यों नहीं की ? शासन की नीति बनाने का उत्तरदायित्व जिन्हें सौंपा जा रहा है, वे भरोसे के आदमी हैं या नहीं ? सर्वसाधारण को व्यवस्था ठीक रखने और सार्वजनिक प्रश्नों से कोई वास्ता नहीं। वे परायी बला सिर नहीं लेना चाहते। भरोसा है, कठिनाई होने पर ले-दे कर काम निकाल लेंगे। ऐसे लोग अपने अधिकार और न्याय का नहीं, धांधली का ही भरोसा करना चाहते है। जो धांधली को परायी बला समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं, वही धांधली को प्रोत्साहन देने के अपराधी हैं।"

श्रृङ्गार का प्रयोजन

भुवन ने पत्नी के साथ उसके मायके के बरामदे में कदम रखा तो भीतर बैठक में कई लोग बोलते सुनायी दिये । मिश्र जी और पड़ोसी मुंशी कालीप्रसाद ने एक साथ—आओ ! आओ ! कह कर उनका स्वागत किया

गली में मुंशी जी का भी आदर है । मुंशी जी के प्रति आदर से गली के नौजवान और बच्चे उनकी बड़ी बहिन को बुआ पुकारते हैं । बुआ बैठक में दीवार के साथ खड़ी थीं । वे गली में मिश्र जी को ही बड़ा मानतीं हैं । उनके प्रति लिहाज में आंचल होठों के सामने किये, अपने साधारण स्वभाव के विरुद्ध स्वर को यथाशक्ति दबाये कुछ कह रही थीं । भुवन और विद्या के आ जाने से उन की बात कट गई थी । अपनी बात पूरी करने के लिये बोलीं—"कूल्हे पर बहुत चोट लगी है, हम तो देख आयी हैं ।"

विद्या ने कौतूहल से बुआ को सम्बोधन किया—"बुआ, किसे चोट आयी, क्या हुआ ?"

विद्या की छोटी बहिन मुन्नी ने विद्या को बता दिया—"सिन्हा बाबू की छोटी लड़की पद्मा है न, जो टेलीफोन एक्सचेंज में काम करती है, बेचारी रिक्शा से गिर पड़ी ।"

बुआ सत्य का दमन नहीं सह सकीं । मिश्र जी के लिहाज के बावजूद स्वर को दबा न सकीं—"गिर क्या पड़ी, लौंडों ने छेड़-खानी करके गिराया है । रामसहाय ने गली के मोड़ पर देखा है । बात छिपा रहे हैं ।"

मिश्र जी कुछ झुंझलाकर बोले—"छिपायें नहीं तो क्या अपनी बदनामी का ढोल पीट दें ?"

भुवन ने अंग्रेजी में आपत्ति की—"डैडी, अन्याय की शिकायत न करने का मतलब तो अन्याय को प्रोत्साहन देना है ।"

मुंशी कालीप्रसाद अंग्रेजी बोल सकने का अवसर नहीं चूकते। उनकी गर्दन ऊँची हो गयी—"हम तो कहते हैं, ऐसी घटना की रिपोर्ट जरूर होनी चाहिये। गुंडागर्दी बढ़ती जा रही है। बिलकुल अंधेर मच जायगा। शरीफ औरतों का बाहर निकलना असंभव हो जायगा।"

मिश्र जी मुंशी जी की नीयत जानते हैं, इसलिये चिढ़ गये—"अंधेर क्या मच जायेगा, अब क्या अंधेर नहीं है ? पुलिस में रिपोर्ट लिखा दें। पुलिस लफंगे लड़कों से दस-बीस रुपये खा लेगी और कुछ नहीं करेगी। कह देंगे—सबूत क्या है ? मामला अदालत में चला भी जाये तो कौन शरीफ आदमी अपनी लड़की को अदालत में पेश करेगा ? अपनी बदनामी कराओ, जगहसायी कराओ।"

भुवन ससुर को डैडी पुकारता है। पिता की तरह उन का आदर करता है और वैसे ही लाड़ में निधड़क बात भी कह देता है, बोल पड़ा—"डैडी, इसमें लड़की की क्या बदनामी और जग हसायी ? बदनामी और जग हसायी तो उसकी होगी जिस पर बदतमीजी और आवारापन का इल्जाम लगेगा।"

विद्या भी पति के प्रोत्साहन से निधड़क हो गयी है। जब से नौकरी कर ली है तब से जबान और भी खुल गयी है। बोल पड़ी—"स्त्री को अन्याय और दुर्व्यवहार की शिकायत करना भी गुनाह है। पुरुष तो अपने सम्मान की रक्षा के लिये सिर काट लेने को तैयार रहते हैं। यह अजब तमाशा है कि स्त्री पर जुल्म हो, उसका अपमान हो, वह शिकायत करे तो बदनामी भी उसी की हो। स्त्री बेचारी इज्जत की रक्षा के लिये मुंह सिये रहे, बेइज्जती निगल जाय।"

भुवन बोल पड़ा—"लोग अपनी बहू-बेटी के साथ अन्याय और दुर्व्यवहार होने पर बहू-बेटी का अपमान नहीं समझते। स्त्री का तो कुछ व्यक्तित्व ही नहीं होता। अपमान होता है बहू-बेटी के घर के मर्दों का। बहू-बेटी का स्थान बाजार और अदालत में नहीं है। परिवार का लड़का शिकायत करने अदालत में जाय तो परिवार का अपमान नहीं होता। स्त्री और पुरुष के लिये सम्मान के दृष्टिकोण अलग-अलग हैं।"

मुंशी जी इस प्रश्न पर भुवन और विद्या का समर्थन नहीं कर सके परन्तु अपनी बात रखने के लिये कह दिया—"दुर्व्यवहार की शिकायत तो होनी ही चाहिये, नहीं तो उसकी रोक-थाम कैसे होगी !"

भुवन ने फिर ससुर को सम्बोधन किया—"घर में सेंध लग जावे, चोरी हो जावे तो पुलिस में शिकायत की जाती है या नहीं ? उस हालत में मोल

अदालत में जाने पर जग हंसायी नहीं समझते ।"

मिश्र जी ने दामाद को लाड़ से डांट दिया—"बेटे, तुम तो बात के लिये बात कह देते हो, प्रेक्टिकल बात नहीं सोचते । ऐसे गुंडों का तो इलाज है कि चार भले आदमी जूतियों से वहीं उनका मुंह तोड़ देते । भैया, अपनी पत अपने हाथ है, बहू-बेटियां ऐसी स्थिति से दूर ही रहें ।"

विद्या ने मुंह फेर कर बड़बड़ा दिया—"स्त्रियां बेइज्जती के भय से घरों में कैद हो जायें, यह अच्छा न्याय है ! गुण्डागर्दी करें पुरुष, कैद का दण्ड भोगें स्त्रियां ।"

मिश्रा जी ने बेटी और दामाद की मुद्रा से उत्तेजक बहस की आशंका अनुभव की । वे मुंशी जी की ओर घूमकर बोले—"भाई मुंशी जी, हम जरा लेटेंगे । ब्लड-प्रेशर ने बहुत परेशान कर दिया है ।" मिश्र जी उठ गये । ऐसे समय वह ब्लड-प्रेशर की शरण ले लेते हैं ।

मिश्र जी आंगन में चले गये तो बुआ ने अपने बड़े के लिहाज से मुक्ति पाई । आंचल होठों के आगे से हटा दिया और बोल पड़ीं—"भैया जी ने ठीक कहा—अपनी पत अपने हाथ होती है । इनकी लड़कियां भी तो तूफान उठाये हैं । इन्हें देख कर कोई क्वांरी कह सकता है ? इनके जूड़े-चुटिया देखो ! सिर पर आंचल पल भर को नहीं टिक सकता । जरा इनके फैसन देखो, बिलाउज-झम्फर देखो ! इन्हें लोग छेड़ेंगे नहीं तो और क्या ?"

विद्या भी फिट और चुस्त ब्लाउज पहिने थी, कैसे चुप रह जाती । उसने बुआ को जवाब दिया—"फैशन क्या अभी हो गये हैं, पहले बनाव-सिंगार नहीं होता था ? पहले बटने नहीं मले जाते थे, सौ-सौ चुटियां बना कर सिर नहीं गूंथे जाते थे ? मेंहदी-महावर नहीं लगायी जाती थी ? सिर से पांव तक गहने नहीं पहने जाते थे कि एक कदम चलें तो झनक-झनक सारा घर झनझना उठे ?"

भुवन ने पत्नी को टोक दिया—"चूड़ियां, झाँझर, बिछूए तो मर्द स्त्रियों को जबरदस्ती पहनाते थे । बड़े लोगों की तीन-तीन, चार-चार पत्नियां होती थीं । सौतें आपस में लड़ती भी होंगी । चूड़ियां होती हैं, सुहाग का चिन्ह ! चूड़ी टूट जाने का भय उन्हें मार-पीट करने से रोके रहता था । झांझर-पायल का फायदा यह था कि पत्नी पर-पुरुष से अभिसार के लिये रात में कदम उठाये तो आहट हो जाये ।"

विद्या ने पति को मुंह चिढ़ा कर उत्तर दिया—"जी हां, बड़े आये ! कदम

उठाने वाली को कौन रोक सकता था! ऐसा करने वाली लच्छे-झांझर उतार कर पहले रख देनी होंगी, नहीं तो बांध लेनी होगी। यह क्यों नही कहते कि की मर्द रनिवास की रुनन-झुनन पर रीझते रहते थे।"

बुआ पति-पत्नी की चुहल का रस लेकर मुस्करा दी और बोलीं—"अरे भाई, पुराने जमाने में फैसन-सिंगार करनी थी तो अपने मर्द के लिये करती थी। घर का काम निपटा कर, साझ को मर्दों के घर लौटने से पहले कघी-चोटी कर ली, धोती बदल ली।"

भुवन बोल पड़ा—"बुआ ने बिल्कुल ठीक कहा। सामन्त काल मे स्त्रिया अपने मर्दों के लिये *ही शृगार करती थीं।* अब तो चाहे घर मे फूहड़ बनी रहे, बाहर निकलने से पहले जरूर टिप-टाप बन जाती हैं।"

बुआ ने स्वीकार किया—"हा, और क्या? अब तो सोलह-सिंगार करके बाजार मे घूमती है, बाजारू ही हो गयीं। तभी तो सड़क-बाजार मे छेड़-खानी, छिनरा होता है, झगडे होते हैं।"

मुन्नी स्वगत बोल उठी—"यह खूब रहा, जो ढग से पहिने-ओढे हो, उससे छेड़खानी कर ली जाये?"

बुआ मुन्नी की उपेक्षा कर कहती चली गयीं—"मर्दों को बाद मे कहो, पहले इन्हें समझाओ!"

विद्या ने गली के मर्दों को ताना दिया—"जी हा, स्त्री तो अपने मर्द के स्वागत मे साझ को सिंगार करके बैठे और मर्द जी घर लौट कर अपना कुर्त्ता भी उतार कर खूंटी पर लटका दें।"

मुन्नी बहिन के मजाक पर मुस्करा दी—"इसीलिये तो समझदार स्त्रिया मर्दों के संतोष के लिये शृगार छोड़कर, आत्मसम्मान के लिये शृंगार करने लगी है।"

भुवन ने मुन्नी और विद्या की ओर कनखियों से देखा और उपेक्षा के नाट्य में कह दिया—"मर्द का क्या है! मर्द को तो अपने ऊपर भरोसा रहता है परन्तु स्त्री का बल रिझा सकने मे ही होता है, इसीलिये तो शृगार करना उसकी प्रकृति बन गई है। स्त्री पहले एक तरह शृगार करती थी, अब दूसरी तरह करती है। जिन आदिम जातियों में कपड़ा पहिनने तक की तमीज नहीं है, स्त्री वहा भी शृगार करती है। वह अपना बदन गुदवा लेती है, अपने बदन को रंग लेती है, नाक-कान मे छेद करके कुछ लटका लेती है। जानती है,

प्रकृति ने उसे नर की तरह सुन्दर नहीं बनाया ।"

मुन्नी ने जीजा की चुनौती का उत्तर दिया—"पुरुष अपने शृंगार के लिये क्या नहीं करते ? आदिम अवस्था में रहने वाले नर कपड़े पहनना नहीं जानते परन्तु केशों में पर खोंस लेते हैं । गले में शंख, सीप, कौड़ियां, सूअर और शेर के दांतों के हार पहनते हैं । शिवजी महाराज क्या कम फैशनेबुल थे ? माथे पर चन्द्र-बिन्दु बनाते थे । जंगल में कुछ और नहीं पाते होंगे तो हड्डियों का ही हार पहन लेते थे । गले में सांप लपेट लेते थे और कमर पर शेर की खाल ।"

विद्या मुन्नी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुयी । उसने मुंशी जी को सुना कर पति को उत्तर दिया—"हमें तो पुरुष ही अधिक बनाव-सिंगार करते दिखायी देते हैं । स्त्रियां जेवर पहिनती थीं तो पुरुष भी कंठमाला और कानों में बाले पहनते थे । किसी पुराने राजा-महाराजा का चित्र देख लीजिये ! स्त्रियों के चोटी-जूड़े की बहुत चर्चा होती है । वे बेचारी तो जैसा बन पाता है, खुद कर लेती हैं । मर्दों के सिर सवांरने के लिये नाई चाहिये । हर पन्द्रहवें दिन इनके सिर की छंटायी होनी चाहिये । माथे पर दिखाने के लिये जुल्फे हों, गर्दन दिखा सकने के लिये बाल छोटे हों । कोई लड़की साल-छः मास में बाब करा ले तो तूफान आ जाय । पुरुष को मुंह चिकनाने के लिये रोज सुबह साबुन-उस्तरा चाहिये । जूड़े के फैशनों की बहुत चर्चा होती है, अपनी मूँछों के फैशन तो गिनिये !"

मुंशी जी अपनी मूँछों पर कटाक्ष का उत्तर दिये बिना नहीं रह सके, बोले—"अजी साहब, मजाक एक बात है मगर लेडीज़ के फैशन तो नैशनल प्राबलम बन गये हैं और क्या नाम, दूसरी बातें !" उन्होंने विद्या की ओर से आँख चुरा कर कह दिया, "पार्लियामेंट तक में इन के फैशनों की चर्चा हो गई है । प्राइम मिनिस्टर को भी इस बारे में बोलना पड़ा कि लेडीज़ को दफतरों में मर्दों के साथ काम करना है तो उन्हें संयम से ड्रेस करना चाहिये । कुछ तो बिलकुल लिहाज छोड़ कर ऐसे एक्साइटिंग ढंग से ड्रेस करती हैं कि भले आदमियों की नजरें नहीं उठ सकतीं ।"

विद्या को क्रोध आ गया, उसने मुंशी जी को चुनौती दे दी—"एक्साइटिंग का मतलब क्या है ? प्राइम मिनिस्टर कौन होते हैं स्त्रियों की पोशाक के बारे में बोलने वाले ? स्त्रियों को क्या और कैसे पहनना-ओढ़ना चाहिये, यह बात स्त्रियां अपनी सुविधा या रुचि से निश्चित करेंगी या पुरुषों के आदेश से ?

स्त्रियों के ब्लाउज उन्हें बहुत खटकते है। प्राइम मिनिस्टर खुद इतनी फिट अचकन क्यों पहनते है ? मर्द अपने कंधे दिखाने के लिये कोट और अचकन में रुई और बुकरम नही भरवाते ? प्राइम मिनिस्टर योरप की स्त्रियों की तरह अपनी पिंडलियां दिखाने के लिये हाथी की सूंड सा तंग पजामा नहीं पहनते ?"

भुवन ने मुस्कराकर टोक दिया—"हां भाई, स्त्रियों की पोशाक पुरुषों के लिये उत्तेजक हो सकती है तो पुरुषों की पोशाक स्त्रियों के लिये उत्तेजक क्यों नही हो सकती ?"

विद्या ने पति की चुटकी के उत्तर में मुन्नी जी को और धमकाया—"स्त्रियां तो पुरुषों की पोशाकों पर कोई ऊधम नही मचाती। पुरुष संयम न रख सकें तो स्त्रियों की पोशाकों को एक्साइटिंग कह दें। एक्साइट होने वाले तो पर्दे की ओट से पायल की झंकार सुन कर ही परेशान हो सकते हैं। आप की दूकान पर मिठाई लुभावनी लगे तो लूट लेंगे या हलवाई को दोष देंगे ? प्राइम मिनिस्टर पुरुषों के असंयम पर एतराज क्यों नही करते ?"

बुआ बहस कुछ समझ नही पा रही थीं। पड़ोसी की लड़की का अपने भाई के सामने इतना बढ़-बढ़ कर बोलना उन्हें अच्छा नही लगा, बोल पड़ी—"करो ? खूब फैशन करो ! हमें क्या है ? अप्सरा बन-ठन कर बाजार में निकलेंगी तो छेड़खानी होगी, झगड़े होंगे, फजीहत होगी।"

मुन्नी तड़प उठी—"बुआ जी, सीता जी क्या बहुत फैशन करती थी, रावण उन्हें क्यों उठा ले गया ? अहिल्या क्या बहुत लिपस्टिक लगा कर बाजार जाती थी ? इन्द्र देवता ने उन्हें क्यों बहका लिया ? संयोगिता को पृथ्वीराज उठा कर ले गया। बेचारी पद्मिनी ने तो कभी महल से बाहर कदम नहीं रखा था तो उस पर भी मुसीबत आ गयी। यह तो पुरुषों की बर्बरता है। स्त्री पुरुष को अच्छी लग जाय, यह भी स्त्री का अपराध ! पुरुष संयम न रख सके तो फजीहत हो स्त्री की !"

विद्या चिढ़कर बोली—"स्त्रियों के अच्छे लगने से पुरुषों को बेचैनी अनुभव होती है इसलिये स्त्रियां घर से बाहर निकलते समय फूहड़ और अस्त-व्यस्त बन कर निकला करें ? पुरुष सभा-समाज में अच्छे, सम्मानित लगने के लिये क्या नहीं करते ? पुरुष अपने शरीर की बनावट के अनुसार अच्छे लगने का प्रयत्न करते है, स्त्रियां अपने शरीर की बनावट के अनुसार अच्छी लगने के लिये ढंग से पहने-ओढ़ें तो उन्हें सजना हो जायगी ?"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पहले भारतीय नारी घर से बाहर जाती ही नहीं थी। बाहर जाते समय उस के मार्ग, शृंगार करने का प्रश्न ही नहीं था। अब वह घर से बाहर निकलती है और घर से बाहर जाते समय सामाजिक औचित्य के विचार से सज-धज आवश्यक समझती है। वह भी सम्मानित और अच्छी लगना चाहती है परन्तु भारतीय पुरुष के संस्कारों में स्त्री अच्छी लगने का एक ही अर्थ रहा है। उस ने स्त्री को किसी और दृष्टि से देखना सीखा ही नहीं। कोई स्त्री अच्छी लगने पर उसकी वही भावना जाग उठती है जो स्त्री के सम्बन्ध में उसके संस्कारों में रही है। उसने नारी को पुरुष की तरह काम करने वाला व्यक्ति—अध्यापक, लुहार, बढ़ई, पण्डित, क्लर्क, डाक्टर, वकील नहीं समझा। नारी को उस ने सदा हरम या जनाने की वस्तु ही समझा। अब भी या जहां कहीं भी भारतीय पुरुष को स्त्री सुन्दर या अच्छी लग जाती है, उस को हरम या जनाने की भावना जाग उठती है। उसे जान पड़ता है—नारी उसे अनैतिकता के लिये निमन्त्रण दे रही है।"

मुन्नी ने बड़ी बहिन की ओर देखकर कह दिया—"जब स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत उपयोगिता के लिये ही होती थी, उस का स्थान घर की चारदीवारी में ही था, तब स्त्री के पहनने-ओढ़ने का निर्णय पुरुष ही करता था। पुरुष अब भी वही संस्कार बनाये हुए है। स्त्री इस युग में घर से बाहर, समाज के कार्यों में बराबर हिस्सा ले रही है। वह राज्यों में मंत्री, विधायक, राजदूत,

डाक्टर, वकील, अध्यापक, इन्सपेक्टर और दफ्तरों में क्लर्क—सभी काम कर रही है। वह केवल घर के उपयोग की वस्तु नहीं रही, पुरुष के समान उत्तरदायी बन गयी है परन्तु पुरुष स्त्री के लिये अपने से भिन्न नैतिकता बनाये रखने और उसके आचार-व्यवहार पर नियंत्रण रखने का मूर्खता भरा अहंकार नहीं छोड़ना चाहता।"

× × ×

विद्या कह रही थी—"पुरुष सुन्दर लगने के लिये अपनी सज-धज में कम यत्न नहीं करते। कन्धों को आकर्षक बनाने के लिये कोट और अचकन में रुई और बुकरम भरवाते है, चूड़ीदार चुस्त पायजामे से अपनी पिंडलियां दिखाते हैं, तरह-तरह के बाल कटाते हैं, अनेक तरह की मूछें रखते हैं ।"

तप्पी का मित्र कुमार उसे बाहर ले गया था। तप्पी कुमार के साथ लौटा तो उस ने बहस को चेताने के लिये पूछ लिया—"हाँ जीजी, क्या कह रही थी? स्त्रियों को भी पुरुषों की पोशाक एक्साइटिंग लगती है?"

विद्या ने उत्तर दिया—"स्त्रियों को जो कुछ लगता हो परन्तु स्त्रियों ने कभी पुरुषों की पोशाक की या उन के बनाव-शृंगार की आलोचना और विरोध तो नहीं किया। न कभी गली-बाजारों में लड़कियों और स्त्रियों के पुरुषों को छेड़ने की घटनायें सुनी है।"

कुमार को बहस का प्रसंग मालूम नहीं था। उस की सहानुभूति सदा नारी जगत की ओर रहती है, बोला—"लफंगबाजी का अहंकार पुरुषों को ही है। पुरुष नारी के आकर्षण में व्याकुल और अधीर हो जाना अपना पौरुष समझते हैं और अपने साथियों में अपनी ऐसी उच्छृंखलता के प्रदर्शन को साहस समझते हैं। हमने तो कभी नहीं सुना कि लड़कियों ने लड़कों को देख कर आहें भरी हों या उनका पीछा करने लगी हों।"

विद्या और मुन्नी स्त्रियों के स्वतन्त्रता से पहन-ओढ़ सकने के दावे के उत्तर में स्त्रियों के शील की ऐसी प्रशंसा सुन कर चुप रह गयीं। भुवन के होंठ मुस्कान में दब गये। कुमार के गाम्भीर्य से समझ लेना कठिन था कि वह तुलना में पुरुषों को उच्छृंखलता का ताना दे रहा था या स्त्रियों के मन में पुरुषों के लिये आकर्षण के प्रति संदेह प्रकट कर रहा था।

भुवन ने कनखी से पत्नी को देखा और कुमार को सम्बोधन किया—"यार,

तुम सचमुच पोंगे हो ! तुमने कभी स्त्रियों और लड़कियों की आपसी बातें नहीं सुनी ? हम ने ऐसी बातें सुनी हैं, स्त्रियों के मुख से भी सुनी हैं" उस ने पत्नी की ओर कटाक्ष किया ।

विद्या ने संकोच से होठों पर आंचल रख लिया । भुवन कहता गया—"लेकिन मित्र, स्त्री स्वभाव के बारे में तुम्हारी अपेक्षा कवि कालिदास और शेक्सपियर कुछ अधिक ही जानते होंगे कि स्त्री भी पुरुष के प्रति आकर्षण अनुभव करती है या नहीं ?"

भुवन मुन्नी की ओर घूम गया—"इन्हें 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' लाकर दिखा दो । कालिदास की शकुंतला, दुष्यंत की पहली झलक देख कर ही उलट गयी थी और स्वगत कहने लगी थी—इन्हें देख कर मेरे मन में न जाने क्यों ऐसी उथल-पुथल हो रही है जो तपोवन के निवासियों के मन में नहीं होनी चाहिये । मित्र, कालिदास और शेक्सपियर दोनों का और मनोवैज्ञानिकों का भी विचार है कि प्रणय का आकर्षण या अंकुर पहले नारी हृदय में ही होता है, तभी वह अधिक सफल होता है ।"

कुमार ने कहा—"परन्तु स्त्रियां उसके लिये कोई प्रदर्शन नहीं करने लगतीं । वे स्वयं तो प्रेम निवेदन नहीं करतीं !"

भुवन मुस्कराया—"बरखुरदार, प्रेम-निवेदन के ढंग होते हैं । उसके लिये लज्जा का तीर मार देना काफी है; क्या जुलैखां यूसुफ पर आसक्त नहीं हुई थी ?"

मुंशी जी नौजवानों की बात में बोल उठे—"अजी, आप अपने देश और अपनी सभ्यता की बात कहिये !"

भुवन ने हाथ बढ़ा कर उत्तर दिया—"मुंशी जी, पार्वती ने ही शिव को पाने के लिये तपस्या की थी । यह बताइये, राधा ने पहले कृष्ण से प्रेम किया था या कृष्ण ने राधा से ?"

मुंशी जी ने असंतोष प्रकट किया—"आप भगवत प्रेम को आसक्ति से मिला रहे हैं !"

"आई एम सारी" भुवन ने क्षमा मांगी, "महाभारत में प्रमाण है, हिडिम्बा ने स्वयं ही भीम से प्रेम निवेदन किया था ।"

मुंशी जी बोल उठे—"हिडिम्बा तो राक्षसी थी । राक्षसी ही पुरुष के प्रति अपना प्रेम प्रकट कर सकती है ।"

विद्या ने पति को सम्बोधन कर मुंशी जी को उत्तर दिया—"यह खूब रही, पुरुष जिसे स्त्री को चाहे तो वीर और पराक्रमी समझा जाये, स्त्री पुरुष को चाहे तो राक्षसी और डायन समझी जाये!"

भुवन ने पत्नी की ओर से मुंशी जी को समझाया—"ऐसे संस्कार पुरुषों में स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति बना कर रखने की इच्छा के कारण हैं। स्त्री की महत्ता और शील केवल चाही जाने में है। पुरुष स्वयं प्रेम निवेदन करने वाली स्त्री का विश्वास नहीं कर सकता। ऐसे स्त्री के साहस से पुरुष भयभीत हो जाता है—यह आज मुझ से प्रेम करती है तो कल दूसरे से भी कर सकती है। पुरुष ऐसी स्त्री को ही पत्नी बनाने योग्य समझता है जिसे स्वयं कोई इच्छा न हो। वह केवल पति की इच्छा-पूर्ति का साधन-मात्र बनी रहे। स्त्री भी पुरुष की पसन्द की कसौटी को खूब पहचानती है इसलिये वह अपनी इच्छा प्रकट करना उचित नहीं समझती, अपना प्रयोजन पूर्ण करने के लिये पुरुष में इच्छा जगाने का प्रयत्न करती है। वह केवल इच्छा नहीं करती, आत्म-समर्पण करती है। वह सदा अपने आप को भीरु, अत्यन्त भोली दिखाने का यत्न करती है ताकि पुरुष को यह विश्वास रहे कि स्त्री की अपनी कोई इच्छा नहीं है, उसे धोखा नहीं हो सकता।

"पुरुष स्त्री को स्वयं प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता। इसका अर्थ है हमारा समाज स्त्री-पुरुष के प्रेम में विश्वास नहीं करता। जो समाज स्त्री को स्वतः प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता, वह स्त्री को सामन्ती युग की तरह केवल भोग और उपयोग की वस्तु समझता है। वह समाज स्त्री को अपनी इच्छा से, अपने संतोष के लिये शृंगार करने का भी अवसर नहीं देना चाहता।"

कृष्णकुमार ने पूछ लिया—"क्या सामन्ती युग में प्रेम होता ही नहीं था?"

भुवन ने दृढ़ता से कहा—"हर्गिज नहीं, सामन्ती युग में प्रेम अनैतिक चीज थी, प्रेम को केवल उच्छृङ्खलता और दोष समझा जाता था।"

मुन्नी बोल पड़ी—"यह कैसे हो सकता है जीजा जी! सम्पूर्ण संस्कृत काव्य, रामायण, महाभारत, पद्मावत और बिहारी-सतसई सामन्त युग का साहित्य है। वह प्रेम और विरह के वर्णन से ही तो भरा हुआ है।"

भुवन गम्भीर हो गया—"वह प्रेम का वर्णन नहीं है। कहीं एक-आध विकल्प हो, वह दूसरी बात है। सामन्ती युग में प्रेम को मान्यता नहीं थी।"

कन्यादान होता था। स्वयंवर कभी होता भी होगा तो पुरुषों की रजामंदी से कि वे एक ही औरत के लिये आपस में न लड़ मरें। घर और वंश के प्रयोजन से पत्नी का पोषण और रक्षा की जाती थी, प्रेम परकीया से किया जाता था क्योंकि परकीया सिर पर लादी हुई नहीं होती थी। उस के प्रति आकर्षण होता था। आज की नैतिकता में परकीया के प्रेम को केवल वासना और उच्छृङ्खलता कहा जायगा। आज की नैतिकता में उस प्रकार की वासना की निंदा है और प्रेम को मान्यता दी जाती है। सामन्ती नैतिकता में प्रेम घृणित समझा जाता था।"

विद्या, मुन्नी, कृष्णकुमार सभी के चेहरों पर असहमति दिखाई दी।

भुवन ने अपनी बात का प्रमाण देने के लिये हाथ उठा कर कहा—"सुनिये, सामन्ती आत्म-सम्मान के अनुसार आप अपनी बहिन-बेटी को किसी पुरुष के उपयोग के लिये, सतानोत्पत्ति के लिये विवाह में दान तो कर सकते है परन्तु आप किसी को अपनी बहिन, बेटी या परिवार की लड़की से प्रेम नहीं करने दे सकते।"

तप्पी समर्थन में बोल उठा—"बिलकुल,बिलकुल ठीक ! प्रेम कीजियेगा किस से; पत्थर से ? किसी भी लड़की से प्रेम करते ही पुराने विचार के लोग आप पर उच्छृङ्खलता का कलंक लगा देंगे।"

मुंशी जी विरोध में बोल उठे—"पुराने युग में प्रेम नहीं था तो क्या अब होगा ? उस युग में तो स्त्रियां प्रेम में सती हो जाती थीं।"

भुवन झुंझलाकर बोला—"पत्नियां ही प्रेम करती थीं, पति तो नहीं करते थे। पति तो पत्नी के प्रेम में जल कर नहीं मर जाते थे, 'सता' नहीं हो जाते थे इसीलिये 'सती' शब्द का पुल्लिंग आप की भाषा में नहीं है। इस शब्द की आप के समाज को कल्पना में भी आवश्यकता न थी। स्त्री या पत्नी प्रेमी के साथ सती नहीं होती थी, स्वामी के साथ सती होती थी। स्वामीभक्ति एक चीज है, प्रेम दूसरी चीज। स्वामी से दासता या भक्ति का अनुशासन निबाहा जा सकता है। प्रेम तो मन की उमंग से, समता के भाव से 'डार्लिंग' (सखा) से किया जा सकता है। जो पहले मालिक बन गया, उस के प्रति स्वामीभक्ति ही होगी, प्रेम नहीं। स्त्री कृपा पर जीती थी। कृपा पाने के लिये दीन बनने का, आकर्षक बनने का यत्न करती थी। उसी के लिये शृंगार और मेक-अप करती थी।"

मुंशी जी ने अस्वीकार किया—"हम तो उलटा देखते हैं, जो जितनी

आजाद हो गयी हैं, वह उतना ही ज्यादा बनाव-शृंगार करती हैं।"

विद्या ने विरोध किया—"स्त्रियों के पहने-ओढ़ने का प्रयोजन क्या केवल पुरुषों को लुभाना ही होता है ? लोग समाज में अपने व्यक्तित्व को उचित रूप में प्रस्तुत करने के लिये भी परिष्कार और प्रसाधन करते हैं। पुरुष समाज में सम्मानित और दूसरों की दृष्टि में अच्छे लगना चाहते हैं। स्त्रियां भी उसी प्रकार परिष्कृत, सुथरी और सम्मान के योग्य लगना चाहती हैं।"

भुवन ने स्वीकार किया—"हां, कुछ स्त्रियां आत्म-निर्भर होने तो लगी हैं परन्तु वे पुरुषों के सन्मुख स्त्रियों के दैन्य के संस्कार से मुक्त नहीं हो पाई हैं। वे अपना आत्म-निर्भर व्यक्तित्व दिखाने की अपेक्षा पुरुषों के लिये कमनीय जान पड़ने में ही अपनी सार्थकता समझे जा रही हैं इसीलिये शृंगार करती हैं।"

विद्या ने पति का विरोध किया—"वाह, बड़े आये पुरुष ! उन्हीं के लिये क्या शृंगार किया जाता है ? अपने संतोष के लिये, आत्म-सम्मान के लिये भी शृंगार किया जाता है।"

भुवन बोला—"आत्म-सम्मान से जो शृंगार किया जाता है, वह दूसरा होता है। शिष्टता-भव्यता का विचार एक बात है और लुभावनी बनने का प्रयत्न दूसरी बात।"

तप्पी भी बोल पड़ा—"चेहरा पोत लेने में, होंठ और नाखून रंग लेने में क्या आत्म-सम्मान है ? यह तो भव्य न लगने के संदेह की हीन भावना है। जब कोई अध्यापिका, कालेज की लेक्चरार, अच्छे सरकारी पद पर काम करने वाली या मेडिकल कालेज की लड़कियां झांकी बनी हुई, अल्हड़ छोकरियों जैसे कपड़े पहने, कोई-कोई अबूझ लड़कियों जैसे हाव-भाव दिखाती हैं तो बहुत तरस आता है कि इन्हें अपनी शिक्षा, सामाजिक स्थिति और व्यक्तित्व का कोई भरोसा नहीं है। वे सम्मानित और आत्म-निर्भर दिखाई पड़ने की अपेक्षा झपट ली जाने योग्य अबला दिखाई देने में ही अपनी सार्थकता समझती हैं। यह नारी के परम्परागत दैन्य का संस्कार नहीं तो क्या है ?"

तप्पी फिर बोला—"इसमें भी संदेह है कि स्त्रियां लुभावनी बनने के लिये जो प्रयत्न करती हैं, उन का परिणाम उलटा ही तो नहीं होता। यह मालूम हो जाय कि चेहरा पुता है, होंठ और नाखून रंगे हैं और आंखों में भी गोट लगी है तो दया ही आती है कि ये बेचारी अपनी असलियत से कितनी संकुचित हैं।"

—:○○○○○:—

सन्तान की मशीन

मुन्नी को आशा थी, रविवार दोपहर बाद चाचा आयेंगे। बड़े मिश्रा जी, भाई की अनुमति के बिना मुन्नी को आई० ए० एस० की परीक्षा की तैयारी के लिये 'हां' नहीं कर सकते थे। मुन्नी के अनुरोध से तप्पी मुन्नी की बड़ी बहिन विद्या और मुन्नी के जीजा भुवन को बुलाने चला गया था। विद्या और भुवन दोनों ही मुन्नी को प्रोत्साहन दे रहे थे।

विद्या विवाह से पहले मैट्रिक तक ही पढ़ी थी। भुवन विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान का अध्यापक है। इतनी कम शिक्षित पत्नी की संगति से क्या संतोष पाता ? उसने विद्या को प्राइवेट बी० ए० करा दिया है। तीन वर्ष पूर्व वह विशेष अध्ययन के लिये निमन्त्रण पाकर अमरीका गया था तो विद्या को भी साथ ले गया था। देश-विदेश के अनुभवों के प्रभाव से विद्या अब मर्दों के बीच बैठ कर आमने-सामने बात कर लेती है। पति का समर्थन है, डरे क्यों ?

तप्पी बहिन और जीजा के साथ पहुंचा तो देखा कि मिश्रा साहब का बड़ा लड़का प्रदीप पहले ही आ गया था। तप्पी जरा सनका, मुंशी कालीप्रसाद और उनका सुपुत्र देवीप्रसाद भी प्रदीप से बात करते-करते बैठक में आकर बैठ गये थे। छोटे मिश्रा जी का आना किसी कारण नहीं हो सका था।

भुवन ने ससुर—बड़े मिश्रा जी के सामने झुक कर चरण छूने का संकेत किया। विद्या और भुवन ने मुंशी जी को भी गली के चाचा के नाते नमस्कार किया।

बड़े मिश्रा जी ने दामाद को आशीर्वाद देकर, बेटी के सिर पर हाथ रख कर पूछा—"कहो विद्दो, सब कुशल है न ? सुरेन्द्र बेटे को नहीं लायी ?"

विद्या ने कुशल बताकर, उसी सांस में पूछ लिया—"पप्पा, मुन्नी को आई० ए० एस० क्यों नहीं करने देते ?"

वड़े मिश्रा जी उत्तर सोच ही रहे थे कि मुंशी जी विद्या को आशीर्वाद दे कर वोल पड़े—"विटिया, तुम तो समझदार हो। अरे विटिया ने एम० ए० कर लिया है तो उसके लिये माकूल लड़का ढूंढ़ना आसान काम नहीं। आई० ए० एस० कर लेगी तो........"

मुन्नी, वहिन और जीजा को देख कर वैठक में चली आई थी। मुंशी जी ने उसके लिहाज में वात पूरी नहीं की।

भुवन ने मुंशी जी की वात सुनकर मुंह फेर लिया परन्तु विद्या वोली—"वाह चाचा जी, अनपढ़ लड़की का व्याह अच्छे घराने में होना तो मुश्किल, लड़की अधिक पढ़-लिख जाय तो उसके लिये वर मिलना मुश्किल।"

भुवन ने मुंह वना कर अंग्रेजी में कह दिया—"स्त्री की शाश्वत-हीनता का विचार और विश्वास ?"

मुंशी जी की भवें उठ गयीं—"हैं ?"

देवीप्रसाद ने तुरंत अंग्रेजी में उत्तर दिया—"प्रकृति में नारी का स्थान ही यह है।"

भुवन ने गर्दन टेढ़ी करके पूछ लिया—"प्रकृति में नारी का स्थान नर की सेवा करना है ?"

देवीप्रसाद प्रोफेसर से दबा नहीं। अंग्रेजी में वोला—"प्रकृति में नारी का कर्म और धर्म मातृत्व है।"

भुवन ने विद्रूप में हामी भरी—"हां शायद ! यह वताइये, नर के नियंत्रण में रह कर, नर की आवश्यकता अनुसार मां बनते जाना, प्रकृति में ऐसा कहां होता है ? प्रकृति में मां वनना न वनना, नारी की इच्छा पर निर्भर करता है। क्या आप के समाज में नारी स्वतन्त्रता से, अपनी इच्छा से मां वन सकती है ? क्या आप जानवरों की तरह प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं ?"

वड़े मिश्रा जी तेज वोलने वाले दामाद से घवराते हैं। उन्होंने गहरे श्वास से 'हरि ओम् ! हरि ओम !!' भगवान को स्मरण कर शान्ति का संकेत किया।

देवीप्रसाद ने मिश्रा जी के संकेत की ओर ध्यान न देकर अपने डाक्टरी ज्ञान का परिचय दिया—"प्रकृति के भी कुछ नियम हैं। नर और नारी के शरीरों की रचना ही भिन्न है। वे भिन्न कर्मों के योग्य वनाये गये हैं।"

भुवन ने देवीप्रसाद को तीखी नज़र से देख कर पूछा—"क्या नारी के शरीर

की रचना पुरुष के संतोष और सेवा के लिये हुई है ? उसके अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व का कुछ महत्व नहीं ?"

पति से शह पाकर विद्या भी बोल उठी—"प्राकृतिक नियम नर-नारी का सहयोग है। प्रकृति नारी को नर के उपयोग और सेवा के लिये नहीं बनाती। मातृ-सत्तात्मक समाजों में क्या होता है ? दूसरे देशों और समाजों में स्त्रियां क्या नहीं कर रही हैं ? रूसी डाक्टरों में अस्सी प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है। स्त्रियां इंजीनियर है, डायरेक्टर है, कैमिस्ट है। सीलोन में स्त्री प्रधान मंत्री है। यूनिवर्सिटी का इस वर्ष का रिजल्ट भी देख लीजिये ! स्त्री की शारीरिक कोमलता के विचार से, शारीरिक बल के कठोर काम स्त्री से अधिक नहीं कराने चाहिये। आपके देश में स्त्रियां ईंटें ढोने के लिये तो मजबूर होती हैं परन्तु समझी जाती हैं पुरुषों से निर्बल !"

विद्या देवीप्रसाद से चार बरस बड़ी है। यूनीवर्सिटी के अध्यापक की पत्नी है पर देवीप्रसाद स्त्री के सामने कैसे निरुत्तर रह जाता ? तमक कर बोला—"मान लिया, स्त्रियां पुरुष से बहुत योग्य हो सकती हैं परन्तु समाज की दृष्टि से देखिये, नेचर में स्त्री का पहला फंक्शन मां का है। स्त्रियां अफसरी करेंगी तो मां क्या पुरुष बनेंगे ?"

मुंशी जी अपने सुपुत्र के तर्क की सराहना में 'हो हो' करके हंस पड़े—"अरे हां, एक फिल्म देखी थी। क्या नाम था, उसमें रेल की ड्राइवर स्त्री, स्टेशन-मास्टर स्त्री, गार्ड भी स्त्री थी। एक स्त्री अपने मर्द को गाड़ी के मर्दाने डिब्बे में बैठाने आई तो गार्ड से बोली—बहन, जरा ख्याल रखना। मेरा मर्द डिब्बे में अकेला है। क्या नाम, स्त्रियां सुबह उठ कर दफ्तर जाने की तैयारी करेंगी और मर्द उनके लिये खाना पकाया करेंगे, वाह-वाह !"

मुन्नी जल-भुन गई। उस के मुह से निकल गया—"जो जिस लायक होगा, करेगा !"

मिश्रा जी बहस का ऐसा रुख देख कर अपनी इज्जत के विचार से उठ कर भीतर चले गये।

मुंशी जी ने मुन्नी की गुस्ताखी का उत्तर दे दिया—"घर में बच्चों को दूध भी मर्द पिलाया करेंगे ?"

विद्या तमक उठी—"आप अपने घर की स्त्रियों के गले में रस्सी डाल कर दूध के लिये बांधे रखिये ! हम भी देखेंगे, कितने दिन बांध सकोगे !"

[illegible]

[illegible] —"[illegible] (मातृ-शासित) समाज में मां का कभी कौन पूछ करता था ?"

"[illegible] !" [illegible] मुंह फेर लिया ।

[illegible] बोला—"एक जमाना था, लोग [illegible] कहते थे, स्त्री का काम परिवार की सेवा ही है । परिवार का कल्याण इसी में है कि स्त्री पति और पति के सम्बन्धियों की सेवा करे । अब समाज के कल्याण की चिन्ता में स्त्री के मातृत्व के कर्म की दुहाई दीजिये ! समाज की चिन्ता मर्दों को ही है, स्त्रियों को नहीं है ? क्या स्त्रियों को अपनी संतान की चिन्ता नहीं होगी ?"

देवीप्रसाद ने व्यंग किया—"अपना बच्चा गोद में लेकर क्या मरीज देखने जाया करेंगी ?"

विद्या ने चुनौती से पूछा—"रूस में सौ में अस्सी स्त्रियां डाक्टर हैं, वह क्या करती हैं ?"

"ओ हो !" मुंशी जी हाथ फैला कर बोले, "बच्चे जन कर नर्सरी में डाल देती होंगी और वह मशीनों से पलते होंगे ।"

"जी हां" मुन्नी ने तप्पी की ओर झुक कर दबे स्वर में कह दिया, "मशीन में पले हुये बच्चे ही अंतरिक्ष विजय कर रहे हैं ।"

त्रिवेदी जी गली से बाहर जा रहे थे । बहस में स्त्रियों को बढ़-चढ़ बोलते सुना तो भीतर आ गये । त्रिवेदी जी मशीन की चर्चा सुन कर भड़क उठते हैं । उन्होंने मुन्नी की बात सुन ली थी । त्रिवेदी जी मोटे चश्मे में से आंखें झपकाकर बोल पड़े—"क्या हो रहा है ? जब देखो मशीन, मशीन ! मशीनों ने तो हमारे जीवन को रूखा, निर्दय और कटु बना दिया है । गांधी जी इसीलिये तो कहते थे, मशीन को छोड़ो, चर्खे का अवलम्ब लो ।"

"चाचा जी, शरीर भी तो मशीन है ।" मुन्नी ने आंचल होंठों पर रख कर

धीरे से कह दिया।

"हूँ" त्रिवेदी जी ने मुंशी की ओर कान जरा झुकाया और फिर अपनी बात कहते गये, "मशीन से आप अन्तरिक्ष विजय कर सकते हैं, परन्तु हृदय और आत्मा विजय नहीं कर सकते। जीवन को मशीनों में ढाल देंगे तो माता का वात्सल्य नहीं रहेगा, नारी का स्नेह से आत्म-समर्पण नहीं रहेगा। नारी लक्ष्मी नहीं रहेगी, मोटर बन जायेगी और पुरुष डायनेमो बन जायगा। सब कुछ हार्स पावर बन जायेगा। जीवन में माधुर्य रहेगा ही नहीं। आप लोहे के पशु 'रोबोट' बन जायेंगे। मनुष्य बनना है तो पुराने आदर्शों और नीति को ही अपनाना होगा।"

"कौन से आदर्शों को, किस नीति को ?" तप्पी ने त्रिवेदी जी को टोकने के लिये जरा जोर से पूछ लिया।

"ऐं" त्रिवेदी जी ने विघ्न अनुभव कर सांस लिया और उत्तर दे दिया, "अपने भारतीय आध्यात्मिक आदर्शों को ! दूसरे कौन से आदर्श हैं !"

"क्या आध्यात्म कहता है कि स्त्री सदा माता बनती रहे, पुरुष की सेवा करती रहे और समाज का स्वतन्त्र व्यक्ति न बने ?" भुवन ने पूछ लिया।

"यही तो स्वाभाविक है" मुंशी जी ने त्रिवेदी जी को प्रोत्साहन दिया, "धन कमाने और बढ़ाने के लिये ही तो मशीनें बनायी जाती हैं, धन के लोभ में ही स्त्रियों से भी नौकरी करवाना चाहते हैं। स्त्री को घर की लक्ष्मी नहीं रहने देना चाहते बल्कि कमाई की मशीन बना देना चाहते हैं।"

"बहुत अच्छा आदर्श है !" विद्या ने भवें उठा कर विरोध किया, "लक्ष्मी का तो अर्थ ही सम्पत्ति है। कन्या बाप की सम्पत्ति हुई, कन्यादान कर दिया तो गरीब स्त्री ससुराल की लक्ष्मी (सम्पत्ति) हो गई।"

भुवन ने और कलम लगाई—"हां, और लक्ष्मी चंचला होती है इसलिये उसे गले में रस्सी और आंखों पर पट्टी बांध कर रखना चाहिये !"

प्रदीप ने अवसर देख टोक दिया—"मिस्टर, यह अमरीका-योरुप का असर बोल रहा है ! भारतीय नारी चंचला नहीं होती, वह बांध कर नहीं रखी जाती। उसका आदर्श सतीत्व रहा है। किस और देश में नारी सती हुई है, कहिये !"

भुवन हंस दिया—'स्त्री का सती हो जाना या पति के साथ मार दिया जाना क्या बहुत बड़ा आदर्श था ? तुमने मानव-शास्त्र पढ़ा होता तो बताना नहीं पड़ता कि ऐसे बर्बर आदर्श भारतीयों की अपेक्षा पुराने मिश्र, अफ्रीका

और फीजी द्वीपों में काफी अधिक थे।"

मुन्नी बोल पड़ी—"मानव-शास्त्र वेत्ता, मन्म बाबू ने अपनी पुस्तक 'नारी का मूल्य' में लिखा है कि अफ्रीका की दाहोमी जाति और फीजी के आदिम-वासियों में पति के साथ पचास-पचास, सौ-सौ स्त्रियां बहुत आग्रह से सती हो जाती थीं या आत्महत्या कर लेती थीं। ब्राह्मणों, ठाकुरों या बनियों के सिवा किस भारतीय बिरादरी में स्त्रियों को सती किया जाता था ? भारत केवल ब्राह्मणों, ठाकुरों और बनियों का नहीं है। भारत की अस्सी प्रतिशत जनता—जिन्हें आप शैड्यूल्ड कास्ट या परिगणित जातियां कहते हैं, उनमें सदा से विधवा विवाह होते चले आते हैं। सम्भ्रांत कुल की विधवा विवाह कर लेतीं तो दूसरे वंश की सम्पत्ति बन जातीं।"

मुन्नी कहती गई—"पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्री दूसरे पुरुष से संतान न पैदा कर ले और वे वंश की जायदाद न बटाने लगें, सती प्रथा का यही आर्थिक कारण था। यह चिन्ता केवल भारत की समृद्ध बिरादरियों में ही थी। प्रश्न वंश की सम्पत्ति, गौरव और उत्तराधिकार का था।

तप्पी ने चुनौती दी—"यदि आप सती प्रथा को गौरव की वस्तु समझते हैं तो उसके पुनरुद्धार के लिये आन्दोलन क्यों नहीं चलाते ? यदि आज सती प्रथा कानूनन जारी कर दी जाये तो आप ही चीख उठेंगे।"

मुन्नी ने याद दिलाया—"शरत बाबू ने लिखा है—जिस समय लार्ड बेंटिंक ने सती प्रथा का निषेध कर दिया था, तब भारत के धर्मरक्षक पंडितों ने अपने धर्म में सरकार के इस हस्तक्षेप के विरुद्ध इंगलैंड की प्रिवी-कौंसिल में अपील की थी।"

तप्पी बोल पड़ा—"ठीक है, भारतीय आदर्शों की रक्षा के लिये गोवध बंद हो गया है, अब सती प्रथा आरम्भ करवा दीजिये ! बूढ़ी गौयों के वध-निषेध का परिणाम तो आपने देख लिया। घी-दूध मिलना दुर्लभ हो गया। सती प्रथा कानूनन लागू कर देने का परिणाम होगा कि स्त्रियां बीमारी में पति की बिगड़ती हालत देख प्राण-रक्षा के लिये भाग जाया करेंगी।"

मुन्नी ने दीवार की ओर देख कह दिया—"क्यों नहीं भागेंगी ? जिन्दा जलने के लिये कौन तैयार होगी !"

भुवन ने कहा—"यदि सती प्रथा के लिये आन्दोलन करने का साहस नहीं है तो परिस्थितियों के अनुसार स्त्री को स्वतन्त्रता और समता दीजिये !"

"क्या कहते है, क्या कहते है आप !" त्रिवेदी जी ने जोर से आपत्ति की, "इतने उत्सर्ग के आदर्शों का मज़ाक बना रहे हैं ?"

नप्पी अपनी जगह से आगे बढ़ गया—"आदर्श क्या था ? जिन्हे आप प्रात स्मरणीय पच-कन्या कहते है, क्या नाम थे उनके ?" उसने मुन्नी की ओर देखा।

"मदोदरी, अहिल्या, कुन्ती, तारा, द्रौपदी" मुन्नी ने जल्दी से बता दिया।

"बताइये, इन मे से किसके आदर्श पर अपने परिवार की कन्याओं को अनुकरण का आदेश देंगे !"

विद्या और मुन्नी शर्मा गईं। भुवन बहुत जोर से ठहाका लगा कर हस पड़ा।

प्रदीप ने आपत्ति की—"आप अपने पूर्वजो का उपहास करते है, यह नही सोचते कि उस समय परिस्थितियां दूसरी थी।"

"हम तो परिस्थितियो की बात सोचते है, आप ही नही सोचते ! नयी परिस्थितियो में पुरानी प्रथाओ को आदर्श कैसे माना जा सकता है ?"

त्रिवेदी जी नाराज हो गये थे, बोले—"तो बन जाइये मशीन, स्त्रियों को भी मशीन बना दीजिये ! बच्चों को भी मशीन से पालिये ! उनके मुख में ट्यूब लगा कर दूध भर दिया कीजिये !"

नप्पी ने कहा—"आपको बच्चे पालने के लिये मशीन जरूर चाहिये इसलिये आप स्त्रियो को बच्चे पालने की मशीन बनाये रखना चाहते हैं। इनके आदर्श तो पडोसी कन्हैयालाल है।"

विद्या बोल पड़ी—"सोलह बरस मे ग्यारह बच्चे। सवा सौ रुपल्ली महीना पाते है, उसमे मकान का किराया, हर सवा-डेढ़ साल में डिलीवरी का खर्चा, मैट्रिक में फेल हो जाने वाले सुपुत्रो को पास कराने के लिये ट्यूशनें और खर्च ! बच्चे तो जलवायु से ही पल जाते होंगे ?"

भुवन गम्भीर हो गया—"जब स्त्री का काम केवल बच्चे पैदा करना और उन्हे पालना ही समझा जाये तो उसे इसी प्रकार जनसख्या बढ़ानी चाहिये। एक ओर आपका यह आदर्श है, दूसरी ओर सरकार बेकारी और भूख रोकने के लिये परिवार-नियोजन—संतति-निरोध की शिक्षा दे रही है। यदि शिक्षित स्त्री जीवन मे एक या दो से अधिक सतान नहीं चाहती तो अपना जीवन चौके-चूल्हे, भाड़े-बर्तन में कैसे खपा दे ! क्या वह देश को समृद्ध बनाने मे योग न दे ?"

"देश को तो समृद्ध बनायें परन्तु बच्चों की उपेक्षा करें ! बच्चे के लिये मां से बड़ा शिक्षक कौन हो सकता है ? बच्चा मां का वात्सल्य और कोमल भावनायें कहां पा सकता है ? जो बात मां के थप्पड़ और मां के दुलार में हो सकती है, वह उसे और कहां मिलेगी ?" त्रिवेदी जी ने पूछा ।

"ऐसी बात है तो बच्चे के रोग-कष्ट के इलाज के लिये भी डाक्टर को न बुला कर, बच्चे का इलाज मां के वात्सल्य से ही कर लेना चाहिये । बच्चे को शिक्षा के लिये स्कूल न भेज कर सब कुछ गोद में ही सिखाना चाहिये, तभी भारत की सन्तानें प्रकाण्ड वैज्ञानिक और वीर योद्धा बनेंगी" भुवन ने कहा ।

देवीप्रसाद ने विरोध किया—"चिकित्सा और वैज्ञानिक शिक्षा की बात दूसरी है । वह स्पेशलाइज्ड (विशेष ज्ञान की) ट्रेनिंग होती है ।"

"डाक्टर साहब !" तप्पी ने विद्रूप से सम्बोधन किया, "एक जमाने में बच्चे-बूढ़ों के सब इलाज दाइयों के टोने-टोटके से हो जाते थे । अब आप कालेज में इलाज करना सीख रहे हैं । बच्चों का शैशव से ही उचित मार्ग पर विकास करने, उनकी प्रकृतिदत्त संभावनाओं को विकसित करने के लिये भी स्पेशलाइज्ड मनोवैज्ञानिक ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है ।"

मुंशी जी बिगड़ उठे—"तो तोड़ दो परिवार को ! ब्याह की जरूरत क्या है ? सब को समाजवादी बना दो !"

तप्पी चुप नहीं हुआ—"ब्याह तो समाजवादी भी करते हैं । जबरदस्ती समाजवादी किसी को नहीं बना दिया जा सकता । अक्ल का ठेका भी समाजवादियों ने नही ले लिया है । बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलेगी तो परिवार टूट नहीं जायेंगे ! परिवार का रूप और क्षेत्र भी सदा एक से नहीं रहे । परिवार तो परिस्थितियों के अनुसार बनते रहे हैं और बनेंगे !"

वर कन्या का मोल

मुंशी कालीप्रसाद बैठक की खिड़की के समीप बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। चश्मा चढ़ाये, गली के सामने सड़क पर नजर लगाये थे। सिन्हा बाबू की बड़ी लड़की स्कूल से इसी समय लौटती है। इक्कीस-बाइस की जवान औरत अपने आप को कुमारी बताने के लिये दो चुटिया करती है। नौकरी कर ली है तो निडर हो गयी है। आंचल कंधे से पीठ पर लटका रहता है। मुंशी जी ऐसी लड़कियों को कुमारी नहीं, जरा मुस्कराकर—'अनब्याही' ही कहते हैं। मुंशी जी को संदेह है कि कोई जवान उसे गली तक छोड़ने आता है। मुंशी जी जवान को पहचान लेना चाहते थे। वे रहस्य-कौतूहल में यह भी भूल गये थे कि उस दिन रविवार था, सिन्हा बाबू की बड़ी लड़की काता घर से कहीं गयी ही नहीं थी परन्तु मुंशी जी की कौतूहल में प्रतीक्षा की तपस्या व्यर्थ नहीं गयी।

गली के सामने दो रिक्शा रुके। एक रिक्शा में से उतरा भुवन और उसका बहनोई रामभरोसे, दूसरी में से उतरी विद्या और भुवन की बहिन। मुंशी जी समझ गये ससुर को प्रणाम करने आये होंगे।

मुंशी जी ने अनुमान कर लिया—समधियाने से मेहमान आये हैं तो जरूर बंगाली के यहां से रसमलाई और समोसे आयेंगे। अपनी बैठक में थे इसलिये कंधों पर बनियान और कमर पर बड़ा अंगोछा ही लपेटे थे। झपाटे से चश्मा उतारा, कमीज-धोती पहन ली और मिश्रा जी के यहां, गली के नाते बेटी और दामाद को आशीर्वाद दे आने के लिये चल दिये।

मुंशी जी ने मिश्र जी की बैठक में अच्छा-खासा जमघट पाया। मुंशी के चाचा, छोटे मिश्रा साहब भी हैदराबाद से आये हुये थे। वे अपनी साली की बेटी के विवाह से लौटे थे और क्रुद्ध स्वर में वर पक्ष के अन्याय की बात

बता रहे थे—वर पक्ष ने दहेज में आठ हजार नकद लेना तय किया था। चार हजार तिलक में भेज दिया गया था और चार हजार द्वारचार के समय चुका दिया गया। वर के पिता आठ हजार हाथ में पा कर चार हजार और मांग बैठे। बेईमान सगाई के समय लड़की की जन्मपत्री देख चुके थे। सब तसल्ली करके सम्बन्ध माना था। अब कहते हैं—हमें मालूम हो गया है, लड़की अठारह की नहीं, बीस की है। हम से धोखा किया गया है। दूसरी जगह हमें बारह हजार मिल रहा था। चार हजार और नहीं मिलेगा तो बारात लड़की को विदा कराये बिना लौट जायगी। लड़की के पिता ने अपना कस्बे का मकान रेहन रखकर और जहां से भी उधार मिल सका, लेकर देने के लिये आठ हजार जोड़ा था। चार हजार अब और कहां से ले आते। बारात सचमुच लड़की को छोड़ कर चली तो बाप को गश आ गया। सब ने वर के पिता को बहुत धिक्कारा पर उन्होंने परवाह नहीं की। बोले—हमें भी अपनी लड़की ब्याहनी है।

पड़ोसी सिन्हा बाबू भी बैठक में आ गये थे। वे तीन जवान कुंआरी लड़कियों के पिता हैं। क्रोध में बोले—"ऐसे कमीने लोगों पर क्रिमिनल ब्रीच आफ ट्रस्ट (धोखे के जुर्म) के लिये दावा दायर किया जाना चाहिये।"

मुंशी जी को अभी छोटे लड़के का ब्याह करना है। उन्होंने सिन्हा की नादानी के लिये सहानुभूति प्रकट की—"जितना तय किया था उससे अधिक मांगना तो नामुनासिब है लेकिन दावा किस सबूत पर किया जा सकता है? ऐसे मामलों में कहीं लिख-पढ़त या रसीद होती है? समधियाने से लड़ाई लेना कोई मजाक है? आखिर बेटी को तो उसी घर भेजेंगे!"

मिश्र जी ने गहरा सांस लेकर दुःख प्रकट किया—"यह समधियों का कर्म हुआ? समधी का तो अर्थ ही सम्बन्धी है। यह क्या सम्बन्ध हुआ? लड़की ऐसी ससुराल को क्या समझेगी?"

विद्या बोल पड़ी—"समझ लेगी, मां-बाप उसे और नहीं झेल सके। उन्होंने कसाइयों को फीस दे दी है कि अब इसे तुम संभालो। कितनी लड़कियों की जिदगियां बरबाद होती हैं दहेज के झगड़ों में। मां-बाप को दुरावस्था से बचाने के लिये कई आत्महत्या कर चुकी हैं।"

विद्या की ननद को अपनी उन्नीस बरस की कुंआरी 'नन्हीं' का ध्यान । गया। भाई के ससुर और दूसरे मर्दों के आदर में सिर का आंचल जरा और आगे सरकाकर बोलीं—"हां, भले इज्जतदार लोगों के लिये बेटी का ब्याह

मामूली बात नहीं है, पर अपनी और बेटी की इज्जत लड़की को ससुराल पहुंचा देने में ही है।"

छोटे मिश्रा जी ने गहरा सांस लेकर समर्थन किया—"सो तो है ही परन्तु दहेज कहां से आये ? हमारे लखनऊ में इस समय दो-ढाई सौ बी० ए०, एम० ए० पास चौबीस-पच्चीस बरस की जवान कुआरी लड़कियां, नौकरियां करके दिन गुजार रही हैं। कारण यह है कि उनके परिवार दहेज नहीं जुटा पा रहे।"

सिन्हा बाबू को बात अपने ऊपर लगी, बोल पड़े—"वाह साहब, बी० ए० एम० ए० पास लड़कियों की इज्जत, क्या तमाम अनकल्चर्ड लोगों के घर जाकर झाड़ू, चौके, बर्तन में खप जाने में है ? उन्होंने शिक्षा पाई है तो उन्हें सोसाइटी के लिये रिप्रेजेंटेशन हासिल करनी चाहिये।"

मुंशी जी एक बेटी के लिये दहेज दे चुके हैं, एक बेटे के लिये ले चुके हैं। इसमें भी पूरम्पूर ही हुआ है। अब वे छोटे बेटे के लिये लेने की प्रतीक्षा में हैं। मुंशी जी ने असहमति में सिर हिला दिया—"अजी, कहीं लड़कियों की जिन्दगी ऐसे कटती है। जीवन गृहस्थ के बिना पूरा नहीं होता।"

नप्पी मुंशी जी की बात जरूर काटता है—"गृहस्थ तो लड़के-लड़की दोनों को चाहिये। हर्जाना सब लड़की का परिवार ही क्यों भरे ?"

मुंशी जी ने पड़ोस के नाते फूफा होने के अधिकार से नप्पी को डांट दिया—"इस में हर्जाने का क्या सवाल है ? तुम्हें एम० डी० तक पढ़ाने में भाई साहब का कितना खर्च हुआ ? तुम्हारी बहू आयेगी तो तुम्हारी पढ़ाई का फायदा उसे नहीं होगा ? भाई साहब को मुन्नी का ब्याह नहीं करना है ?"

मिश्रा को अपनी छोटी बहन के बारे में पड़ोसियों की चिन्ता पसन्द नहीं। वह मुंह खोले कि नप्पी तड़ाक से बोल पड़ा—"मुन्नी ऐसी अपाहिज नहीं है कि उसके जीवन-निर्वाह के इन्श्योरेन्स के लिये दस-पन्द्रह हजार भरने की जरूरत हो !"

मुन्नी को अपने विषय में चर्चा पसन्द नहीं। वह उठ कर आंगन में चली गयी परन्तु सिन्हा बाबू की भी तो मुन्नी जैसी कुआरी बेटियां हैं, बोले—"हां, जो पढ़ी-लिखी लड़कियां डेढ़-दो सौ महीने कमा रही हैं, ससुराल वालों पर उनके निर्वाह का क्या बोझ ? वो तो स्वयं ससुराल को सहायता दे सकेंगी और जनाब, अब तो दहेज मांगना गैरकानूनी है। सर्वोदय वाले भी दहेज विरोधी कान्फ्रेन्स कर रहे हैं।"

छोटे मिश्रा जी बोले—"सर्वोदयी दहेज की निन्दा में प्रस्ताव पास कर देंगे। उनके पास कौन शिकायत ले जायगा कि हमें दहेज देना पड़ रहा है? दहेज से रक्षा के लिये जैसा कानून बना है, उस से कुछ नहीं होने का।"

मुंशी जी ने उंगली उठा कर चेतावनी दी—"जनाब, कानून द्वारा दहेज मांगना या उसके लिये दवाव डालना मना है, वेटी को गिफ्ट (उपहार) देना या स्वीकार करना तो गैरकानूनी नहीं है।"

भुवन ने होंठ विचकाकर कह दिया—"गिफ्ट में वीस हजार का चेक भी मांगा जा सकता है।"

मिश्र जी दामाद की हंसी का अर्थ समझ कर बोले—"अपने संतोष के लिये वेटी को देना एक बात है।"

रामभरोसे बोले—"अरे साहव, वेटियों वाले ही जानते हैं। संतोष के लिये क्या, लड़के वाले नींवू की तरह निचोड़ते हैं। कुछ तो ऐसे वेहया हैं कि साफ पूछ लेंगे—क्या खर्च कीजियेगा? कुछ मुलायमियत से कहेंगे जैसे पके आम को पिलपिला रहे हों—हां हां, लड़का आपका ही है, जल्दी क्या है। उसकी पढ़ाई पर बहुत खर्चा हो गया है। विलायत जाने को भी कह रहा है। दो-चार और परिवारों से भी संदेश आये हैं। जरा सोच लें, आप फिर पूछ लीजियेगा……!"

छोटे मिश्रा जी ने बात पूरी की—"मतलब यही कि आप गांठ ढीली करें, बड़ी से बड़ी आफर दें नही तो चांस गया!"

मुंशी जी फिर बोल उठे—"अरे भाई, जब देना पड़ता है तो लेना भी पड़ता है। यह तो संसार है, इसी तरह चलता है।"

विद्या ने कहा—"लेना-देना एक बात है पर इस बात का क्या विश्वास कि अधिक दहेज लाने वाली लड़की अच्छी ही होगी?"

भुवन ने टोक दिया—"जरूर, अधिक दहेज लाने वाली ही अच्छी होगी। सुनिये, लड़के के सामने चार लड़कियों का प्रस्ताव है। वह किसी लड़की को पहचानता नहीं। लड़कियां तो चारों हैं। वह किस को चुने? जो अधिक दहेज लाये, वह अधिक अच्छी। लड़के-लड़कियां परिचय और आकर्षण से स्वयं विवाह करते नहीं, विवाह तो परिवार करते हैं। उनकी पसन्द तो केवल दूसरे परिवार की स्थिति और अपने आर्थिक लाभ पर निर्भर करेगी। ऐसी भी बिरादरियां हैं जो लड़की का दाम ले लेती हैं। उनके लिये जो लड़के

वाला अधिक दाम दे, वही अच्छा। जब तक ब्याह दामों के आधार पर होंगे, दाम लिया-दिया जायेगा।"

तप्पी बोला—"अपनी लड़की देते समय दाम लेना एक हद तक क्षम्य हो सकता है। दूसरे का परिवार चलाने के लिये अपनी पाली-पोसी लड़की दी जाय तो उसका दाम लेना मुनासिब है।"

मिश्र जी ने ग्लानि से सिर हिला दिया—"राम-राम।"

मुंशी जी जोर से बोल पड़े—"बेटी को बेचने से अधिक घृणित काम और क्या होगा ? यह तो बर्दाफरोशी हुई।"

तप्पी ने पूछ लिया—"क्या बेटे के दाम लेना बहुत सम्मानजनक है ? यह बर्दाफरोशी नहीं ?"

भुवन ने तप्पी के समर्थन में प्रमाण दिया—"अपनी बेटी के लिये मूल्य लेना बर्दाफरोशी है तो वह शास्त्रों के अनुकूल है। शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं—ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच। आर्ष और आसुर विवाह प्रणाली में कन्या का मूल्य लेने का विधान है। वर का मूल्य या दहेज लेने का विधान किसी शास्त्र और स्मृति में नहीं है, इसलिये दहेज ही अधिक घृणित समझा जाना चाहिये।"

सिन्हा बाबू ने उत्साह से भुवन का समर्थन किया—"यही तो बात है, यही तो बात है परन्तु अब शास्त्र और न्याय की बात मानता कौन है ? दहेज के रूप में लड़के का दाम लेना जरूर बर्दाफरोशी है। सर्वोदय वाले भी तो यही कह रहे हैं कि इस बुरी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जाना चाहिये। सम्मानित लोगों से, मिनिस्ट्रों और बड़े आदमियों से हस्ताक्षर लेने चाहियें कि वे दहेज नहीं लेंगे।"

छोटे मिश्र जी हंस पड़े—"सम्मानित लोग तुरन्त हस्ताक्षर कर देंगे। उन्हें मांगने की जरूरत क्या है ? वे जानते हैं, उनके परिवार में लड़की देने का साहस वही करेगा जो खूब बड़ी गिफ्ट दे सकेगा।

सिन्हा बाबू ने कहा—"नहीं साहब, सर्वोदयी नौजवानों से भी हस्ताक्षर कराने के लिये कहते हैं कि दहेज का लालच नहीं करेंगे, सैक्रिफाइस करेंगे।"

भुवन चौंक उठा—"ब्याह और सैक्रिफाइस ? ब्याह भोग के लिये किया जाता है या त्याग के लिये ? ऐसी बात सर्वोदयी ही कह सकते हैं कि दया करके गरीब लड़कियों से ब्याह कीजिये।"

भुवन ने तप्पी को पुकारा—"त्याग का यह पुण्य तुम कमा डालो ! यह दया करके व्याह करेगा तो सबसे गरीब की लड़की से व्याह करना होगा, जिसका व्याह कठिन हो । सबसे गरीब की लड़की शायद अनपढ़ ही होगी। अनपढ़ का भी शायद कहीं व्याह हो जाये । दया से त्याग करना है तो इसे अंधी या तपेदिक से मरती कुंवारी लड़की से व्याह करना चाहिये ।"

विद्या ने कहा--"हाय, क्या रहे हो ?"

तप्पी बोल पड़ा—"जी हां, दया और त्याग करना है तो एक ही पर क्यों, बाकी क्यों अनाथ रहें ? ऐसी दस-पांच को न समेट लूं ! रुपया गांधी-निधि से दिलवा दीजिये !"

मुंशी जी ने समाधान करना चाहा—"भई, जिस समाज की जो परम्परा होती है, उसमें वही चलता है । न इसे दहेज कानून बन्द कर सकता है, न सर्वोदयी बन्द कर सकेंगे ।"

भुवन ने कह दिया—"दहेज बन्द तो हो ही जायेगा और इसे स्वयं लड़कियां ही बन्द कर सकेंगी। लड़कियों में हिम्मत और अक्ल आने की देर है। परिस्थितियां वह समय ला रही हैं ।"

सिन्हा बाबू ने निराशा से पूछ लिया - "हिम्मत और अक्ल अब क्या कम है ? बेचारी लड़कियां क्या कर लेंगी ?"

भुवन ने उत्तर दिया-"लड़कियां सब कुछ कर लेंगी । अभी लड़कियां पढ़-लिख कर भी अपना सम्मान भोली, मूक और अबोध मानी जाने में ही समझती हैं । लड़की अपने योग्य लड़के को काबू कर ले, लड़का भी उसी लड़की से विवाह करना चाहे तो लड़के का परिवार झख मार कर बिना दहेज मांगे विवाह करेगा । लड़की वाला दाम मांग ही न सकेगा ।"

मुंशी जी ने आतंक प्रकट किया—"क्या मतलब, लड़कियां लड़कों पर फंदे डाला करें ?"

तप्पी ने उत्तर दिया—फंदों का मतलब होता है, अनुचित लाभ के लिये [धो]खा देना । एक दूसरे के योग्य लड़के-लड़कियों में परस्पर प्रेम हो जाने पर [उन]का साथ निबाहने की इच्छा को फंदा डालना नहीं कहा जायेगा ।"

[फि]र कहा—"क्या इज्जतदार घरों की जवान लड़कियां लड़कों ....?"

दोनों हाथ मल कर चिंता प्रकट की—"भगवान न करे, भले

घर की लडकियां ऐसे लच्छन सीखें।"

भुवन ने ससुर को उत्तर देने के लिये मुशी जी से पूछा—"भले घर की जवान लड़की अपने योग्य किसी लड़की से प्रेम करे तो इस मे खानदान की क्या बेइज्जती है ?"

मुशी जी हस दिये—"यह बेइज्जती नहीं तो और क्या है ? कौन इज्जतदार आदमी अपनी बेटी के लिये ऐसा कलक सह सकता है ?"

विद्या ने मुह फिरा कर स्वगत कह दिया—"इज्जत परिवार की होती है, लडकी की कुछ इज्जत नहीं !"

भुवन ने पत्नी का भाव समझ कर मुशी जी को घूर कर पूछा—"अपनी बेटी की इच्छा का विचार किये बिना किसी अपरिचित को उसका पति बना देने का क्या अर्थ है ? बेटी की इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्व नहीं, उसे पति बना दिये गये व्यक्ति की कामेच्छा पूर्ण कर सन्तानोत्पत्ति करनी होगी। यह बेटी की इज्जत है परन्तु बेटी किसी लड़के को पहचान कर, उसे अच्छा और अपने योग्य समझ कर जीवन का साथी बनाने के प्रयोजन से विवाह की इच्छा प्रकट करे तो इस मे हम अपनी बेइज्जती समझते है।"

तप्पी बोला—"अपने आप को सम्भ्रान्त समझने वाले लोग आत्म-प्रवचना से सतोष पाते है। वे बहुत यत्न से मिथ्या-विश्वास बनाये रखते हैं कि हमारी बेटियां पढ़-लिख कर, जवान होकर और सब प्रकार से समझदार होकर भी प्रेम और जीवन की इच्छा को अनुभव नहीं करती। उनकी अपनी कोई पसन्द नहीं है। वे किसी को अच्छा-बुरा नहीं समझ सकती। वे इतनी सत्ता और भावना शून्य हैं कि उनमे जीवन की इच्छा के रूप में प्रेम की भावना उत्पन्न हो ही नहीं सकती। हम अपना सम्मान, अपने लिये कुछ न कर सकने योग्य बेटियों के लिये दहेज में मर्द खरीद देने में समझते हैं।"

सिन्हा साहब अपनी तीनों कुवारी जवान बेटियों पर बात न आने देने के लिये बोले—"अरे भाई, कहने को चाहे जो कह लो परन्तु अच्छे खानदान की लडकियां ऐसी बात सोचती ही नहीं।"

विद्या ने नजर फर्श की ओर झुका कर सिन्हा साहब की विवशता से सहानुभूति प्रकट की—"जो ब्याह की बात नहीं सोचतीं, जिनकी प्रवृत्ति गृहस्थ की ओर नहीं है, उन पर पति क्यों लादे जायें ?"

भुवन बोल प [illegible]—"लड़की अच्छी और पर्याप्त शिक्षा पाकर भी

चौवीस-पचीस की आयु तक किसी को पसन्द नहीं आ सकती या जो किसी नौजवान को प्रभावित नहीं कर सकी, उसे व्याह की इच्छा करने का अधिकार क्या है ? जो ऐसी कूड़ा लड़की का वोझ उठाना स्वीकार करेगा, दहेज में भारी रकम मांगेगा ही !"

तप्पी वोल पड़ा—"ऐसी कूड़ा लड़कियों से केवल त्याग की भावना से या दहेज की कामना से ही विवाह किया जा सकता है । जीवन के सुख की कल्पना से नहीं ।"

विद्या ने कह दिया—"दहेज की कुप्रथा गरीव माता-पिता पर दया करने के उपदेशों से समाप्त नहीं हो सकती । यदि पढ़ी-लिखी जवान, समझदार लड़कियां, अपने परिवार से दहेज के मोल में पति खरीद लेने की आशा करें तो उनकी शिक्षा व्यर्थ ही समझी जानी चाहिये ।

"अवांछित कुमारियों के उद्धार का यह पुण्य कर्म, गांधीवाद के अनुसार पत्नी को वहन बनाकर रखने के लिये केवल सर्वोदयी त्यागी ही कर सकेंगे । क्या लड़कियों के लिये यह सम्मानजनक है ?"

पाप या वरदान

मिश्र जी की गली में आठ-दस मकान छोड़ कर विनायक सुकुल रहते हैं। विनायक सुकुल रेलवे वर्कशाप मे क्लर्क हैं। मिश्र जी और विनायक सुकुल के परिवारो मे रिश्ते का सम्बन्ध है जरूर, पर वह सम्बन्ध लगभग अनुसधान का ही विषय हो गया है। अब सम्बन्ध वास्तव में जात-बिरादरी का ही है। मिश्र जी और सुकुल दोनो को याद है कि सुकुल जी के पिता, मिश्र जी की मा के मामा के लड़के के साले थे। इसी सम्बन्ध के नाते मिश्र जी ने सुकुल के पिता रघुनाथ सुकुल को गली मे मकान दिलवा दिया था।

रघुनाथ सुकुल फलित-ज्योतिष से जीविका चलाते थे। उनके पुत्रो ने मैट्रिक तक अंग्रेजी शिक्षा पाई है, इसलिये सरकारी नौकरी की सम्मानजनक जीविका अपना ली है। विनायक सुकुल के तीन छोटे भाई जीविका की खोज मे दूसरे नगरो मे चले गये हैं। सुकुल पिता के समय से ही चले आये किराये के मकान मे जमे हैं। मकान ऐसा बुरा नही। दो कोठरियां और छोटा-मोटा आगन भी है। किराया सस्ता है—युद्ध के समय से पहले था, तीस प्रतिशत बढ़ जाने पर भी साढ़े पाच रुपये ही है। सुकुल आयु के विचार से भरी जवानी में हैं—'वैरी की आरा मे नौन फिटकरी'—चालीस के इस पार। अभी देश की 'मानव शक्ति, (मैन पावर) बढ़ाने मे काफी सहायक हो रहे हैं।

सुकुल की मां पोते के जन्म की पूजा का प्रसाद और गाने का निमत्रण मिश्र जी के यहां देने आई थी तो विद्या के लिये भी प्रसाद दे गई थी। मुन्नी से अनुरोध कर गयी थी—"बिटिया, तू ही बिट्टो के यहा भिजवा देना। मैं डुकरी उतनी दूर कहां जाऊंगी!"

विद्या और भुवन न्यू हैदराबाद से शापिंग के लिये हजरतगंज जाते हैं तो मिश्र जी, मां और मुन्नी से मिल लेने के लिये घर पर भी आ जाते हैं।

चौवीस-पचीस की आयु तक किसी को पसन्द नहीं आ सकती या जो किसी नौजवान को प्रभावित नहीं कर सकी, उसे व्याह की इच्छा करने का अधिकार क्या है ? जो ऐसी कूड़ा लड़की का वोझ उठाना स्वीकार करेगा, दहेज में भारी रकम मांगेगा ही !"

तप्पी वोल पड़ा—"ऐसी कूड़ा लड़कियों से केवल त्याग की भावना से या दहेज की कामना से ही विवाह किया जा सकता है। जीवन के सुख की कल्पना से नहीं।"

विद्या ने कह दिया—"दहेज की कुप्रथा गरीव माता-पिता पर दया करने के उपदेशों से समाप्त नहीं हो सकती। यदि पढ़ी-लिखी जवान, समझदार लड़कियां, अपने परिवार से दहेज के मोल में पति खरीद लेने की आशा करें तो उनकी शिक्षा व्यर्थ ही समझी जानी चाहिये।

"अवांछित कुमारियों के उद्धार का यह पुण्य कर्म, गांधीवाद के अनुसार पत्नी को बहन वनाकर रखने के लिये केवल सर्वोदयी त्यागी ही कर सकेंगे। क्या लड़कियों के लिये यह सम्मानजनक है ?"

पाप या वरदान

मिश्र जी की गली में आठ-दस मकान छोड़ कर विनायक मुकुल रहते हैं। विनायक मुकुल रेलवे वर्कशाप मे क्लर्क हैं। मिश्र जी और विनायक मुकुल के परिवारो मे रिश्ते का सम्बन्ध है जरूर, पर वह सम्बन्ध लगभग अनुसंधान का ही विषय हो गया है। अब सम्बन्ध वास्तव में जात-बिरादरी का ही है। मिश्र जी और मुकुल दोनो को याद है कि मुकुल जी के पिता, मिश्र जी की मा के मामा के लड़के के साले थे। इसी सम्बन्ध के नाते मिश्र जी ने मुकुल के पिता रघुनाथ मुकुल को गली मे मकान दिलवा दिया था।

रघुनाथ मुकुल फलित-ज्योतिष से जीविका चलाते थे। उनके पुत्रों ने मैट्रिक तक अंग्रेजी शिक्षा पाई है, इसलिये सरकारी नौकरी की सम्मानजनक जीविका अपना ली है। विनायक मुकुल के तीन छोटे भाई जीविका की खोज मे दूसरे नगरों मे चले गये हैं। मुकुल पिता के समय मे ही चले आये किराये के मकान मे जमे है। मकान ऐसा बुरा नहीं। दो कोठरियां और छोटा-मोटा आगन भी है। किराया सस्ता है—युद्ध के समय से पहले का, तीस प्रतिशत बढ़ जाने पर भी साढ़े पाच रुपये ही है। मुकुल आयु के विचार से भरी जवानी में है—'बैरी की आख मे नोन फिटकरी'—चालीस के इस पार। अभी देश की 'मानव शक्ति, (मैन पावर) बढ़ाने मे काफी सहायक हो रहे हैं।

मुकुल की मां पोते के जन्म की पूजा का प्रसाद और गाने का निमंत्रण मिश्र जी के यहां देने आई थी तो विद्या के लिये भी प्रसाद दे गई थी। मुन्नी से अनुरोध कर गयी थी—"बिटिया, तू ही बिद्दो के यहां निमंत्रण देना। मैं इतनी दूर कहां जाऊंगी!"

विद्या और भुवन न्यू हैदराबाद से शापिंग के लिये हजरतगंज आते हैं तो मिश्र जी, मां और मुन्नी से मिल लेने के लिये घर पर भी आ जाते हैं।

भुवन और विद्या के बैठक में आने पर मिश्र जी, बेटी और दामाद से कुशल-मंगल पूछ रहे थे। विद्या की मां भी आंगन की ओर से दरवाजे में आ गई। माथे पर आंचल खींच कर बोली—"सुन विद्दो, तू जरा मुकुल भैया के यहां बधाई दे आना।"

"कैसी बधाई ?" विद्या का मुंह खुला रह गया।

मुन्नी ने होंठों पर आंचल रख लिया। मिश्र जी ने मुस्कान छिपाने के लिये मुंह फेर लिया। मां ने आंचल से छिपे होंठ दबा लिये।

तप्पी बैठक में आ गया था। उसने विद्या को उत्तर दिया—"दीदी, तुम्हें भी बधाई ! विनायक भैया के यहां वंश-वृद्धि हुई है।"

विद्या के होंठ खुले रह गये थे। विस्मय से आंखें भी फैल गई। उसके मुख से निकल गया—"और हो गया, कितनी गिनती हो गई ?"

"नौ भाई-बहिन हो गये" मुन्नी ने बता दिया।

मां ने दामाद की उपस्थिति के कारण आँचल जरा और खींच कर बेटी को डांट दिया—"क्या हुआ है तेरी अक्ल को ? किसी की आस-औलाद गिनते है ?"

तप्पी बोल पड़ा—"मौसी, तुम दीदी को बधाई देने के लिये कह रही हो, प्रधानमंत्री सुनेंगे तो चिंता से गंजे हो गये सिर पर हाथ फेरने लगेंगे।"

"वाह, जनगणना करने वाले तो गिनेंगे ही !" भुवन ऊंचे स्वर में बोल पड़ा।

"जनगणना की क्या बात है प्रोफेसर साहब !" मुंशी कालीप्रसाद की आवाज सुनाई दी और वे बैठक के दरवाजे पर प्रकट हो गये। मुंशी जी के विचार भुवन से नहीं मिलते परन्तु वह गली की बेटी और दामाद के प्रति सद्-भावना रखते हैं। मुंशी जी रिटायर्ड हैं। उनका अधिकांश समय बैठक की खिड़की से गली के मोड़ और सड़क पर झांकने में बीतता है। इससे गली के आचार-व्यवहार पर उनकी नजर रहती है और समय भी कटता है। विद्या और भुवन को रिक्शा-टांगे से उतरते देखते हैं तो वे भी आ जाते हैं। बहन और जीजा के आने पर तप्पी, सड़क के मोड़ वाले बंगाली हलवाई के यहां से रसमलाई और तिकोने जरूर मंगवा लेता है और बड़े उत्साह से भुवन और विद्या के लिये, अपने खास टी-सेट में चाय बनवाता है। मुन्नी और विद्या की मां मुस्कराकर कह देती हैं कि मुंशी जी गली की बेटी और दामाद को आशीर्वाद देने तो क्या आते हैं, चाय और तिकोने उन्हें बुला लेते हैं।

मुन्नी जी के प्रश्न का उत्तर तप्पी ने दिया—"विनायक शुकुल के यहा भैया हुआ है न ! मौसी कहती है कि जनगणना वालों को न गिनाया जाय।"

मुशी जी बोल पड़े—"जनगणना वालों को कैसे नही बतायेंगे ? कानूनन बताना होगा। जनगणना वालो को पूरी सख्या न बताना तो जुर्म है।" मुशी जी गली की ओर खिड़की के समीप रखे मोढ़े पर बैठ कर कहने गये, "गिनने-गिनने से क्या होना है भैया, यह तो भगवान की देन है। सब अपने कर्मों से होता है।"

"भाभी को किन कुकर्मों का दड मिल रहा है ?" विद्या के मुख से निकल गया, "भाभी मुझ से पाच-छ बरस ही बडी होगी। नौ बच्चे, क्या हालत हो गई है !"

भुवन बोल पड़ा—"डबल शिफ्ट पर प्रोडक्शन होगा तो मशीन जल्दी ही घिसेगी।"

मुन्नी और विद्या ने होठ दबा लिये परन्तु मुशी जी तटस्थ भाव से बोले—"क्या कहती हो बिटिया !" मुशी जी ने विद्या को सम्बोधन किया, "भगवान सतान सुकर्मों के फल मे देते है कि कुकर्मों के फल मे ?"

विद्या चुप न रह सकी। उसने पड़ोस के चाचा के अदब मे स्वर दबा कर कह दिया—"भगवान सतान ही देते हैं, मा बनने वाली की यातना का ख्याल नही करते। सतान का पेट भरने, पालने-पोसने का इन्तजाम नही करते। बच्चो की और भाभी की हालत तो देखिये !" विद्या खिन्नता वश न कर सकी, "भाभी पेट फूली मकडी की तरह हो गई है। वही हालत बच्चो की है। विनायक भैया सब मिला कर डेढ सौ भी नहीं पाते होंगे। नौ बच्चे, खुद दो जने और मा—बारह प्राणी क्या खाते-पहनते होगे ? तिस पर अच्छे-बुरे दिन मे दवा-दारू की जरूरत और बच्चो की स्कूल की फीसे, किताबे-कापिया। यह क्या मनुष्यों का जीवन है ?"

भुवन गभीर हो गया। विद्या की ओर देख कर बोला—"तुम लोग गली मे स्त्रियों को कुछ समझाती क्यो नहीं, यहा काफी पढी-लिखी स्त्रिया भी हैं। मिसेज दुबे को कहो—इस गली की स्त्रियों को भी फेमिली-प्लानिंग के बारे मे कुछ समझायें। वे लोग गलियों मे दवाईयां और दूसरे साधन मुफ्त भी बांटती है।"

'फैमिली-प्लानिंग' शब्द सुन कर मुन्नी उठ गई और मा को बुला कर भीतर ले गई।

विद्या को दबंग पति का सहारा है और दो वर्ष से वह समाज कल्याण में असिस्टेंट डाइरेक्टर है इसलिये कम झेंपती है। उसने कह दिया—"चाहिये तो जरूर परन्तु गली की फूहड़ औरतें समझाने वालियों को ही कुछ उल्टी-सीधी बात न कह दें!"

मुंशी जी ने चिंता और भय की मुद्रा में हाथ जोड़ कर दुहाई दी—"ना भैया, 'फेमिली-प्लानिंग' की कारीगरी का पाप इस गली में सिखाकर, यहां वेशर्मी और गन्दगी मत फैलाइयेगा!"

विद्या ने संकोच से मुंशी जी की ओर से मुंह फेर लिया—"अम्मा के पास जा रही हूं।" वह भी बैठक से चली गई परन्तु भुवन ने मुंशी जी की ओर भवें उठा कर पूछ लिया, "इसमें वेशर्मी और गन्दगी क्या है?"

तप्पी बोल पड़ा—"हाइजिन या स्वास्थ्य-रक्षा के उपायों में क्या निर्लज्जता है?"

मुंशी जी झुंझला उठे—"ऐसी निर्लज्जता और व्यभिचार के उपायों को आप स्वास्थ्य-रक्षा कहते हैं? यह अच्छी स्वास्थ्य-रक्षा हुई। विनोबा जी ने कहा है—जिस में संतान का पालन-पोषण करने की सामर्थ्य नहीं, वह संयम से रहे और कहा है कि आप वासना को वश में नहीं कर सकते तो उसका फल स्वीकार कीजिये।"

तप्पी ने मुंशी जी को चुनौती दी—"वासना का फल? आप तो कह रहे थे संतान सुकर्मों के फल से होती है। इसका मतलब हुआ, वासना सुकर्म है।"

मिश्र जी ने भांजे को स्नेह से डांट दिया—"तुम सदा उल्टी साखी चलाते हो। वासना सुकर्म कैसे हो सकती है? वासना ही तो सब पापों का मूल है।"

मुंशी जी ने तप्पी की चुटकी के बदले में चुटकी ली—"अरे भाई, 'माडर्न' लोग हैं। वासना को सुकर्म नही कहेंगे तो इन्हें आजादी कैसे मिलेगी?"

तप्पी गंभीरता से बोला—"वासना को आजादी आप ही कह सकते हैं, हम तो उसे प्राकृतिक बंधन कहते हैं और उन बंधनों को कम कष्टप्रद बनाने की बात सोचते हैं। सम्पूर्ण चिकित्सा-शास्त्र का यही प्रयोजन है।"

मुंशी जी बोल उठे—"तुम्हारी आधुनिक सभ्यता सिवाय वासना की पूजा के और है क्या?"

भुवन ने मुंशी जी से पूछ लिया—"वासना किसे कहते हैं? वासना से अभिप्राय क्या है?"

मिश्र जी ने पड़ोसी के आदर में दामाद को चुप करा देना चाहा—"यह भी कोई पूछने की बात है, सब जानते है वासना क्या होती है ? सभी धर्मों ने, सभी महात्माओ ने वासना की निंदा की है।"

भुवन ने ससुर के प्रति आदर में सयम में उत्तर दिया—"धर्म और नैतिकता अतिवासना से बचने का उपदेश देते हैं। वासना तो 'अर्ज आफ लाइफ'—जीवन की प्रवृति का नाम है। वह तो जीवों की प्रकृति है। यदि वासना न हो तो सृष्टि न चले।"

मुंशी जी ने विरोध किया—"वाह, वासना तो चीज ही बुरी है। उससे जीव अंधा हो जाता है। महात्माओं ने सदा उसकी निंदा की है। मनुष्य वासना के वश में हो जाय तो पशु हो जाता है। वासना तो पाप है।"

तप्पी ने पूछ लिया—"तो क्या पशु भी पाप करते है ? पशुओ की वासना तो ईश्वर और सृष्टि की देन और प्रकृति का अग होती है। ऐसे ही मनुष्य की वासना भी प्राकृतिक है। महात्मा और ऋषि-मुनि भी उसी से पैदा हो जाते हैं। जीव प्रकृति-दत्त वासना के आधीन रहते हैं और मनुष्य वासना को वश मे, सीमा मे रखने के उपाय करता है, इसीलिये उसने सतनि-निरोध के उपाय बनाये हैं। मनुष्य वासना से समाप्त नही हो जाना चाहता। उसके हानिप्रद फल से बचना चाहता है, इसीलिये अपने उत्तरदायित्व और परिवार की संख्या नही बढ़ाना चाहता।"

मुंशी जी ने फिर विनोबा जी की दुहाई दे कर कहा—"अधिक सतान नहीं चाहते तो वासना का दमन करो। गांधी जी भी संतान निरोध के कृत्रिम उपायों के विरुद्ध थे। उन्होंने भी वासना के दमन का उपदेश दिया है।"

भुवन चिढ़ गया—"महात्मा जी ने जिस आयु मे 'आत्म-कथा' लिख कर वासना के दमन का उपदेश दिया है, उस आयु में तो विनायक भैया भी वासना के दमन का उपदेश देने लगेंगे। जवानी मे तो महात्मा जी जैसे पुराने तपोवनों में रहने वाले ऋषि, जहा-तहा सुदरियों को संतान का वरदान बाटते फिरते थे। उनकी सतानें मल्लाहों तक के घरो मे खेलती थीं।"

तप्पी बोल उठा—"धर्मोपदेशों से तो मनुष्य न वासना का दमन कर सका, न वासना के फल से बच सका है। चिकित्सा-विज्ञान का विकास ही मनुष्य को सब प्रकार की वासनाओं, असयमों और भूल-चूक के फलों से बचा सकता है। सतति-निरोध की प्रक्रिया, चिकित्सा सम्बन्धी उपायों के अतिरिक्त और क्या है ?"

मुंशी जी झुंझला उठे—"हम तो कहते हैं सत्यानाश हो ऐसे चिकित्सा-शास्त्र का, जिससे संसार की नैतिकता धर्म-संयम और पाप का भय ही समाप्त हो जाये।"

भुवन बोला—"मुंशी जी, धर्म-संयम और पाप के भय का उपदेश देने वालों की महिमा तो यह है कि यूरोप में जब गनोरिया और सिफलिस के इलाज का आविष्कार हुआ तो वहां के सबसे बड़े दया-धर्म के ठेकेदारों, धर्म-गुरुओं और मठाधीशों ने फतवा दे दिया था कि ईश्वर ने यह रोग व्यभिचार का दंड देने के लिये बनाये हैं। इन रोगों के इलाज का आविष्कार करना, ईश्वरीय न्याय और धर्म में हस्ताक्षेप करना है………।"

भुवन की बात में तप्पी बीच में ही बोल पड़ा—"गनोरिया, सिफलिस और अवांच्छित गर्भ का इलाज करना यदि भगवान के न्याय में हस्ताक्षेप है तो हैजे, मलेरिया, निमोनिया और कान के दर्द का इलाज करना भी भगवान के न्याय में हस्ताक्षेप है। हैजा और कान में दर्द, भगवान प्रसन्न होकर आशीर्वाद के रूप में नहीं देते होंगे। इलाज की आवश्यकता तो किसी न किसी भूल या असंयम के कारण ही पड़ती है।" तप्पी ने नजर मुंशी जी से चुरा ली। इसका कारण था, दो वर्ष पहले मुंशी जी को चाट की चाट के कारण हैजा हो गया था। तब तप्पी ने ही तुरंत उपचार किया था। मुंशी जी की बड़ी बहिन, गली की बुआ के कान में सदा ही दर्द बना रहता है।

भुवन ने अपनी बात पूरी की—"धर्म और भगवान के ठेकेदार तो मनुष्य को सदा ही तड़पते देखना चाहते हैं। मनुष्य के अज्ञान और संकट में ही उनकी बन आती है। जिन रोगों का इलाज सर्वसाधारण को नहीं मालूम, उनसे रक्षा के लिये ही पंडितों, मौलवियों और जादू-टोने वालों को पुकारा जाता है। धर्म के ठेकेदार तो मनुष्य को सदा तड़पता और व्याकुल ही देखना चाहते हैं नहीं तो मनुष्य उनकी शरण में क्यों आये?"

विद्या एक हाथ में रसमलाई की प्लेट और दूसरे में तिकोनों की प्लेट लिये बैठक में आ गई। उसने अन्तिम वाक्य सुन लिया था। पति की आंखों में देख कर पूछ लिया—"क्या 'बन्द रोड' वाले बाबा जी की बात बता रहे हैं?"

भुवन जोर से हंस पड़ा—"जी हां, आजकल एक बाबा जी आये हुये हैं। भक्तों को भभूत देते हैं। पान में रख कर खा लो तो संतान का भय न रहे। अब तक बाबा लोग संतान होने के लिये भभूत दिया करते थे। पहले पत्रों में

मिश्र जी जरा मुस्कराये—"भगवान के लिये इच्छा, कारण, कार्य और फल की बात कहना शास्त्र के विरुद्ध है। इसका अभिप्राय तो यह होगा कि भगवान भी इच्छा, कर्म और फल के बंधनों से बंधे हैं।"

मुंशी जी ने मिश्र जी की आध्यात्मिक बात का उत्तर दिया—"भगवान के इच्छा और फल में बंधने का क्या मतलब हुआ ? सृष्टि को भगवान ने नहीं तो किसने बनाया है ? यह उनका कर्म है तो यह उनकी इच्छा भी हुई। भगवान तो भगवान हैं। उन्हें इच्छा और फल में कौन बांध सकता है ? वे तो लीलामय हैं।"

विद्या ने किसी की ओर भी न देख कर स्वगत कह दिया—"यह खूब रही ! विनायक भैया के यहां भगवान की इच्छा के फलस्वरूप एक पर एक होते चले जा रहे हैं और मुसीबत भोग रही हैं भाभी।"

भुवन ने काम-काज की बात को आध्यात्म के सीमारहित तर्क में उलझते देखा तो बोल पड़ा—"न तो किसी ने भगवान को देखा है, न भगवान को सृष्टि बनाते देखा है परन्तु संसार प्रत्यक्ष अनुभूत सत्य है। आप काम की बात सोचिये, मनुष्य का जीवन भगवान की इच्छा और प्रकृति के क्रम का विरोध कर सकने से ही संभव होता है। मनुष्य यदि प्रकृति के क्रम और भगवान की इच्छा के आगे सिर झुकाता रहे तो जानते हो क्या होगा ?…वही अवस्था जो अबीसीनिया के ईश्वर-भक्त ईसाईयों की हुई थी।"

देवीप्रसाद ने विस्मय से पूछ लिया—"अबीसीनिया के ईश्वर भक्त ईसाईयों ने क्या किया था ?"

भुवन ने उत्तर दिया—"एलबर्ट कामू के उपन्यास 'प्लेग' में ओरान नगर में प्लेग की महामारी का वर्णन है। ओरान के एक पादरी ने व्याख्यान में कहा है कि अबीसीनिया में प्लेग पड़ने पर वहां के ईसाइयों ने महामारी को ईश्वर की इच्छा के अनुसार अपने अपराधों का दंड मान लिया था। उन्होंने ईश्वर की इच्छा को स्वीकार करने के लिये प्लेग से मर जाने वाले लोगों के कपड़ों में लिपट-लिपट कर स्वयं रोग को ग्रहण किया और स्वयं ईश्वर की इच्छा पूर्ण करने के लिये समाप्त हो गये।"

मुंशी जी ने कहा—"ये तो गप्प है। ऐसा कहीं हो सकता है ?"

तप्पी बोल पड़ा—"गप्प क्यों है ? आप केवल अपने ही सम्प्रदाय के लोगों को ईश्वर-भक्त समझते हैं। यदि विनोवा भावे और गांधी जी ईश्वर से प्रेरणा

पाने का दावा कर सकते है तो मुसलमान और ईसाई ईश्वर भक्त ऐसा दावा क्यों नहीं कर सकते ? यदि आप वास्तव में ईश्वर की इच्छा का पालन करना चाहते हैं तो अबीसीनिया के ईश्वर-भक्तो का अनुकरण कीजिये । केवल प्लेग ही क्या, प्रकृति का क्रम और ईश्वर की इच्छा तो किसी भी अवस्था में जीवो को अधिक देर तक जीवित नही रहने देना चाहती । वनो में रहने वाले अथवा जल में रहने वाले जीव ईश्वरीय और प्रकृति के विधान के अनुसार रहते हैं, उनका जीवन कैसे और कितने दिन चलता है ?"

मिश्र जी ने तप्पी को स्नेह से धमकाया—"तुम भी क्या बका करते हो ! प्रकृति का क्रम और भगवान की इच्छा यदि जीवो को जीवित न रहने देना चाहे तो कोई एक क्षण भी जीवित रह सकता है ? कैसी असगत बात करते हो ! भगवान की इच्छा के बिना तो पत्ता भी नही हिल सकता, कोई जीव एक सास नही ले सकता । भगवान सृष्टि का निर्माण करते हैं, जीवो को उत्पन्न करते हैं और वही चाहते हैं कि जीव जीवित न रह सकें !"

मुन्नी भी बड़ी बहन की तरह किसी को न सुना कर बोल पड़ी—"भगवान के तो तीनो ही गुण हैं—सृष्टि और पालन उनका गुण है, तो सहार भी उन्ही का गुण है परन्तु हम सहार से बचना चाहते है ।"

तप्पी ने मुन्नी की बात अनसुनी कर खीझ मे मुशी जी को सम्बोधन किया—"भगवान की इच्छा के बिना तो पत्ता भी नही हिल सकता, आकाश से जल की बूद भी नही गिर सकती । पिछले वर्ष गोमती मे बाढ़ किसकी इच्छा से आई थी ? उस बाढ़ से विनाश को रोकना, ईश्वर की इच्छा में दखल देना ही था । जो लोग बाढ में बहते जा रहे थे, उन्हें निकालना भी ईश्वर की इच्छा और प्रकृति के क्रम में बाधा डालना ही था ।"

मिश्र जी ने तप्पी को फिर डांटा—"आत्म-रक्षा के लिये प्रयत्न की शक्ति और बुद्धि भी तो भगवान ही देते हैं । यह तो नहीं कि मनुष्य आत्म-रक्षा का प्रयत्न ही न करे । भगवान ने बुद्धि किस लिये दी है ?"

मुन्नी ने लाड के स्वर मे पिता को टोक दिया—"चच्चा, यह खूब रही ! भगवान क्या सृष्टि और संहार की शतरंज खेलते हैं ? मनुष्य को आत्म-रक्षा के प्रयत्न के लिये बुद्धि और शक्ति दे देते हैं और स्वयं संहार के मोहरे चलाते हैं । देखते हैं, मनुष्य अपने आप को कैसे बचाता है !"

भुवन साली की बात से चहक उठा—"प्रकृति का सम्पूर्ण क्रम सृष्टि और

से जीवाणुओं की हत्या तो होती रही न ? अच्छा यह वताओ, यदि चांस और भगवान की इच्छा साथ न दे तो क्या किया जाये ? उपाय होते हुये भी उसका प्रयोग न करें ?"

भुवन गंभीर हो गया—"तुम वताओ, क्या विनायक सुकुल चाहते थे कि उन के नौ लड़के-लड़कियां हो जायें ? उनके न चाहने पर भी हो गये। वे बार-बार प्रकृति के मोहक जाल में फंस कर धोका खोते रहे। विनायक की सुकुलाइन तो देहात की अनपढ़ लड़की है। भगवान की इच्छा और कर्म-फल समझ कर जैसे-तैसे सहे जा रही हैं। यदि सुकुलाइन कस्वे या नगर की अच्छी पढ़ी-लिखी लड़की होतीं तो अपने जीवन को क्या समझतीं ? इस युग में सभी लड़कियां पढ़-लिख रही हैं। उनमें अपने व्यक्तित्व की भावना और स्वाभिमान पैदा हो रहा है। क्या कोई पढ़ी-लिखी, स्वाभिमानी व्यक्ति की तरह जीवन विताने वाली स्त्री, पूरी आयु चूल्हे-चौके और सौर में विताने के लिये तैयार होगी ? एक-दो बच्चों की उमंग स्त्री-पुरुषों को हो सकती है लेकिन वच्चों को जीवन की चिन्ता और वोझ कौन वना लेना चाहेगी ?"

तप्पी आगे खिसक आया—"विनायक और उन जैसे लोग, तुम्हें और इन्हें (भुवन को) अपनी पत्नियों के साथ सिनेमा-वाजार और उत्सव-मेले में आते जाते देखते हैं तो ईर्ष्या भरी आलोचना करने लगते हैं परन्तु मन में सोचते हैं—हाय, हमें ऐसा अवसर न मिला। सभी लोग पढ़ी-लिखी लड़कियों से शादी करना चाहते हैं। सब लोग लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने पर मजवूर हो गये हैं। सभी लोग यथा-संभव अच्छे स्तर का जीवन विताना चाहते हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियों में भी विवाह के बाद अपना समय सार्थक करने और कुछ कमा कर अच्छे स्तर पर रहने की प्रवृत्ति वढ़ रही है।"

विद्या पति को घर लौट चलने की चेतावनी देने के लिये बैठक में आयी थी। वह तप्पी के समर्थन में वोल पड़ी—"स्त्रियां ऐसा क्यों न करें ? मैट्रिक, इंटर तक पढ़ी-लिखी लड़की क्या महाराजिन और महरी के ही काम के योग्य समझी जानी चाहिये ? अगर उसे महाराजिन और महरी ही वनना है तो उसकी शिक्षा पर पैसा फूंकने और उसके मन में असंतोष जगाने से लाभ ही क्या है ? पुरुष पढ़-लिख कर सम्मानजनक और अच्छी आमदनी का श्रम करना चाहता है। स्त्रियों में क्या स्वाभिमान और आत्मसम्मान नहीं होता ? स्त्रियां जिन विभागों और दफ्तरों में काम करने लगी हैं, पुरुषों से कम काम

तो नही कर रही !"

देवीप्रसाद बोल उठा—"सभी स्त्रियां घरो के बाहर काम करने लगेंगी तो भारत भी योरुप हो जायगा। वे सैर के लिये और सिनेमा-क्लब मे जा सकेंगी। घरों मे मेज-कुर्सी, कालीन हो जायेंगे, स्कूटर और मोटर भी हो सकते हैं। घर होटल बन जायेंगे, जीवन का माधुर्य नही रहेगा।"

विद्या चिहुक उठी—"तुम्हारा जीवन तो अब भी बहुत कुछ फीका हो गया होगा ! असली माधुर्य तो तुम्हारे दादा-दादी ने भोगा होगा। तुम्हारी दादी सुबह उठ कर पहले चक्की मे अनाज पीसती होगी, फिर सिर पर घडा रख कर कुऐं मे पानी लाती होंगी। उसके बाद गोबर से सारा घर लीपती होगी। घर के दो-चार मैले कपडे धोती होगी। घर में यदि गाय-भैंस होगी तो दही भी बिलोती होंगी। दादा खा-पीकर लेटते होंगे तो पाव भी दबाती होंगी। जब वह गर्मी मे सो जाते होंगे तो पखा करती रहती होंगी। तुम्हें बिजली के पंखे से वह मिठास कहा मिलती होगी ? भाभी को पखा करने के लिये खडा कर लिया करो ! हो सके तो जीवन का माधुर्य पाने के लिये अपने घर में नौकर-नौकरानी, महरी, धोबी, मेहतरानी सब हटा दो ।"

तप्पी ने देवीप्रसाद का हाथ पकड कर पूछा—"एक बात कहूं, बुरा तो नही मानोगे ? डाक्टरी पास करके दो-ढाई सौ रुपये की तनखाह पाओगे, सौ-दो सौ प्राइवेट प्रैक्टिस मे कमा लोगे ! एक नवाब के यहा तुम्हे दो हजार महावार नौकरी दिला दूँ ? तुम्हारा काम होगा, नवाब साहब को नित्य अपने हाथ से मालिश करके नहलाना, उनके हाथ-पाव के नाखून साफ रखना, समय-समय पर उनके जूते और पोशाक बदलवा देना, उनका बिस्तर ठीक करना, उनके लिये खाना खुद परोसना, उनके व्यक्तिगत बर्तन और कपड़ो को साफ रखना ....।"

देवीप्रसाद के मुंह से गाली निकल गयी—"ऐसी-तैसी तुम्हारे नवाब साहब की... और ऐसी-तैसी तुम्हारी !"

विद्या चहक उठी—"अब क्यो बुरा लगा ? स्त्रिया बेचारी पढ-लिख कर पुरुषो की व्यक्तिगत सेवा करती रहे, केवल रोटी-कपड़े के लिये ? क्या उन मे कुछ स्वाभिमान नही ?"

भुवन ने पत्नी का समर्थन किया—"दूसरों की शारीरिक सेवा के लिये विवश होना मनुष्यता का अपमान है। जिसे भी अवसर मिलता है, दूसरो की

शारीरिक सेवा से बचना चाहता है। तुम जानते हो, अनपढ़ होकर भी लोग घरेलू नौकरी और झाड़ू-बुहारू करने की अपेक्षा चपरासी बन जाना या रिक्शा चला लेना ही अधिक सम्मानजनक समझते हैं। पति-पत्नि के प्रेम और भावों के माधुर्य का अर्थ, पुरुष के लिये स्त्री को व्यक्तिगत शारीरिक सेवा का दास बना देना नहीं है। प्रेम और जीवन के माधुर्य का अर्थ—पूर्ण समता और सहयोग है, सेवा करना-कराना नहीं।"

विद्या फिर बोल पड़ी—"यदि स्त्रियों को जीवन भर केवल घरेलू नौकरों के ही कामों—चूल्हा-चौके, घर के कपड़ों और बच्चों के आराम की ही चिन्ता करनी है तो उन्हें पढ़ाने-लिखाने की क्या आवश्यकता है ? जब उन्हें शिक्षा दी जाती है, अच्छे कामों के योग्य बनाया जाता है तो उनका कर्त्तव्य और अधिकार है कि अपनी सामर्थ और योग्यता के अनुसार, समाज के सम्मानित कार्यों में सहयोग दें।"

देवीप्रसाद हंस दिया—"जरूर कराओ काम ! यहां मर्दों को ही नौकरियां नहीं मिल रही हैं……खैर यह बताइये, घर के काम भी आखिर कोई करेगा या नहीं ?"

विद्या ने उसकी हंसी का जवाब मुस्कान से दे दिया—निकम्मे पुरुष ऐसा ही स्वामित्व करते रहेंगे ? जो जिस योग्य होगा, उसे वैसा काम करना पड़ेगा। स्त्री होना अयोग्यता का प्रमाण या अपराध नहीं है।"

भुवन गंभीरता से बोला—"यदि नारी को समाज के स्वाभिमानी, आत्म-निर्भर व्यक्ति की तरह रहना है तो वह हर दूसरे साल सौर में नहीं बैठ सकेगी। वह अपना सामाजिक उत्तरदायित्व और व्यवसाय, वैसी शारीरिक दशा में कैसे निबाह सकेगी ? समाज में कार्य करने वाली स्त्रियों को भी संतान की उमंग जरूर होगी। वे एक-दो, अधिक से अधिक तीन संतानों की इच्छा कर सकती हैं।"

विद्या फिर बोल पड़ी—"इससे अधिक बच्चे ढंग से पाल ही कौन सकता है ? खरगोश और पिल्ले पालने हों तो बात दूसरी है।"

भुवन ने बात पूरी की—"सुकुलाइन भाभी की श्रेणी की प्रकृति और स्वभाव की स्त्रियां चाहे जो करें परन्तु स्वाभिमानी और सामाजिक कार्यों में सहयोग देने वाली स्त्रियों के लिये अवांच्छित संतानों का मतलब जीवन की बरबादी है। वे संतति-निग्रह के विश्वास योग्य वैज्ञानिक साधनों की उपेक्षा कैसे कर सकती हैं ?"

रिदा और पत्नी की माँ कुछ और भी बढ़ गयी—"नारी के लिये माँ बनना कोई मामूली बात तो है नहीं ! सन्तान पिता को भी प्यारी लगती है परन्तु सन्तान के लिये कष्ट माँ ही भोगती है । ऐसे जोखिम के काम को स्त्री मान पर कैसे छोड़ सकती है !"

मनोज से विद्या का चेहरा लाल हो गया था परन्तु उसने कह ही दिया—"माँ बनने न बनने का निश्चय और निर्णय पूर्णतया माँ की ही इच्छा और सुविधा से होना चाहिये, पिता की इच्छा से हरगिज नहीं ।"

भुवन ने पत्नी का संकोच मिटाने के लिये उसका समर्थन किया—"यदि नर-नारी की समता और नारी की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त मानना है, तो हमें नारी की प्राकृतिक परवशता का भी उपाय करना होगा । पति-पत्नी के पारस्परिक आकर्षण और प्रेम के परिणाम को पति शारीरिक रूप से नहीं भोगता, पत्नी को यह परिणाम भोगने की परवशता क्यों हो ? वह अपने संतोष और उल्लास के लिये चाहे तो उसका स्वागत करे और चाहे तो उस परिणाम से बची रहे ।" भुवन ने देवीप्रसाद की ओर तर्जनी उठाकर कहा, "नारी की शारीरिक निर्बलता के बावजूद, वैज्ञानिक साधनों के आविष्कारों ने नारी को नर के समान स्तर पर खड़ा कर दिया है परन्तु अब समाज के लिये उसकी सब से महत्वपूर्ण शक्ति-सृजन की शक्ति ही उसकी परवशता बन जाती है । सन्तति-निरोध के वैज्ञानिक साधन नारी की उस परवशता से स्वतन्त्रता के उपाय हैं । इन उपायों से नारी की मातृत्व की शक्ति, उसकी प्राकृतिक परवशता नहीं रह जाती बल्कि उसकी इच्छा और उल्लास की पूर्ति का साधन बन जाती है । यह वैज्ञानिक आविष्कारों के वरदान के उपाय ही नारी को पुरुष के समान स्वतन्त्रता दे सकते हैं । यह वैज्ञानिक उपाय ही प्रकृति पर मनुष्य की सबसे बड़ी विजय और सभ्यता तथा संस्कृति को बढ़ाने वाले वरदान हैं ।"

—:○•○○○•○:—

धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र और धर्म-प्राण प्रजा

एक नगर में साम्प्रदायिक दंगा हो जाने का समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। दूसरे नगरों में भी साम्प्रदायिक उत्तेजना न फैल जाये, इसलिये भिड़ जाने वाले सम्प्रदायों के नाम पत्रों में नहीं दिये गये थे।

काफी चौपाल में समाचार के प्रसंग पर बहस चल पड़ी। बनर्जी ने कहा—"समाचारों पर पर्दा डालने से क्या लाभ? सब लोग जानते हैं कि दंगा किन सम्प्रदायों में हुआ होगा?"

देव ने प्रसंग को जरा नरम करने के लिये कहा—"दंगा सभी सम्प्रदायों में हो सकता है। साम्प्रदायिकता में असहिष्णुता और उत्तेजना की भावना सदा ही रहती है। साम्प्रदायिक विश्वासों में परस्पर भेद हैं। उन भेदों के प्रभाव परस्पर-विरोध के अतिरिक्त किस बात में प्रकट हो सकते हैं?"

नायर ने कहा—"दुर्भाग्य यह है कि साम्प्रदायिक विश्वासों के भेदों को महत्व दिया जाता है। साम्प्रदायिक विश्वासों का मूल लक्ष्य एक है। सभी सम्प्रदाय मानव-मात्र की एकता और विश्व-बन्धुत्व में विश्वास करते हैं।"

भुवन मुस्कराया—"तुम सद्भावना से भेदों को दबा देना चाहते हो! सम्प्रदाय रहेंगे तो उन में भेद भी रहेंगे। सम्प्रदायों की ओर प्रवृत्ति रहेगी तो उनके प्रभाव कितने समय तक दबे रह सकेंगे? साम्प्रदायिक विश्वासों की दृष्टि में महत्व मूल तत्वों के सादृश्य का नहीं, परस्पर विश्वासों और व्यवहारों के भेद का ही है। इन भेदों को सद्भावना के उपदेशों से दूर कर सकने का विश्वास आत्म-प्रवंचना मात्र है।"

जहीर ने विस्मय प्रकट किया—"सद्भावना से विरोधों के भ्रम को दूर करने के लिये यत्न करना और मूल सत्यों पर सहमत होने के सुझाव आत्म-प्रवंचना कैसे हो सकती है? गांधी जी इसी के लिये बलिदान हो गये।"

भुवन बोला—"तथ्यो से मुह मोडने को आप आत्म-प्रवचना के सिवा और क्या कहेंगे ! गाधी जी ने साम्प्रदायिक भेदों को दूर करने की सद्भावना के लिये आत्म-बलिदान कर दिया। गाधी जी का आत्म-बलिदान भी साम्प्रदायिक विश्वासो की परस्पर-विरोधी भावनाओ को दूर न कर सका। जब तक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण रहेंगे, विरोधी भावनायें रहेंगी।"

देव ने तर्जनी उठाकर कहा—"भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो मे सौजन्य और सद्भावना की आशा, विरोधो के परिणाम मे सहृदयता की आशा करना है। गाधी जी साम्प्रदायिक विश्वास अर्थात विरोध के कारणो को भी बनाये रखना चाहते थे और विरोध के परिणाम मे सद्भावना भी चाहते थे। यह कैसे सभव हो सकता है ?"

भुवन ने टोका—"लोग अपने सम्प्रदायों को सब से बड़ी सद्भावना मानते है। सम्प्रदायो का सघर्ष सद्भावनाओ के विश्वासो का ही सघर्ष होता है। दो सद्भावनाओं की टक्कर से सद्भावना नहीं उत्पन्न हो सकती, सहार होगा। अरे भाई, दो जल भरे बादल टकराने मे शान्ति नही बरसती, बिजली ही कडकती है। साम्प्रदायिक भावना के परस्पर-विरोधी दृष्टिकोणों को महत्व दिया जायगा तो परिणाम, विरोध के अतिरिक्त और क्या होगा ?"

देव ने कहा—"गाधी जी ने भेदो के कारणो को मिटाने या उन्हे महत्व न देने के लिये कभी नही कहा। उनका उपदेश भेदों को यथावत् रखते हुये सह-अस्तित्व और एकता कायम करने का था। गाधी जी सहिष्णुता का उपदेश देते थे—'निट अस एग्री टू डिसएग्री'। इस उपदेश से उनका अभिप्राय होता था—भेद होते हुये भी परस्पर विरोध न करें। इस वाक्य का दूसरा अर्थ और बहुत सीधा परिणाम होगा कि हम अपने विरोधो को स्वीकार कर लें, हमारे भेद दूर नही हो सकते। वही बात व्यवहार मे हमारे सामने आ रही है। हम साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अपने भेदों को बनाये रखने की नीति पर चल रहे हैं और उसी मे अपनी शक्ति नष्ट कर रहे है।"

नायर ने समझाया—"गाधी जी ने तो भेदों को मिटाने का प्राण-पन से पूरा यत्न किया था। सबसे बड़ा भ्रम तो साम्प्रदायिक तत्वों और धार्मिक भावनाओं को परस्पर-विरोधी मान लेना है। सभी धार्मिक विश्वास और उन का मूल तत्व एक है—मानव-मात्र की एकता और विश्व-बधुत्व के व्यवहार से सृष्टि के आदि कारण ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना। गाधी जी ने इसी बात पर बल दिया

है—ईश्वर अल्लाह तेरे नाम .... ।”

तप्पी ने टोका—“गांधी जी ने जरूर कहा है—‘ईश्वर अल्लाह तेरे नाम’ परन्तु कितने आदमी उनकी बात मान सके ? भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हज़ारों वर्षों से अल्लाह और ईश्वर की अपनी-अपनी व्याख्याओं और परिभाषाओं में विश्वास करते आये हैं । इन परिभाषाओं और व्याख्याओं के आधार पर ही सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रंथों की रचना हुई है । गांधी जी के कहने से वे कैसे मान लें कि उनके सम्प्रदाय हजारों वर्षों से भ्रम में हैं । गांधी जी मनुष्य जीवन का लक्ष्य सांसारिक सफलता नहीं, ईश्वर प्राप्ति ही मानते थे । पारलौकिक और धार्मिक विश्वासों का दृष्टिकोण कभी हमें एक नहीं कर सकता । समाज में सहिष्णुता और सहयोग का आधार केवल सांझे सांसारिक हित का दृष्टिकोण ही हो सकता है ।”

भुवन ने कहा—“यह भी आत्म-प्रवंचना है कि धार्मिक विश्वासों के मूल तत्वों में विरोध नहीं । साम्प्रदायिक विश्वासों का मूल तत्व सृष्टि की आदि-शक्ति को प्राप्त करना है । उसकी आदि-शक्ति की पहचान और उसको प्राप्त करने के विधानों में ही सब झगड़ा है ।”

तप्पी ने कहा—“ईश्वर के आदेशों और उसकी भक्ति के उपचार के सम्बन्ध में सम्प्रदाय परस्पर सहमत नहीं हो सकते । क्या आप नहीं जानते, एक सम्प्रदाय की ईश्वर भक्ति, दूसरे सम्प्रदाय की दृष्टि में ईश्वरीय आदेश का विरोध और ईश्वर का अपमान हो सकता है ? कुछ सम्प्रदायों के अनुसार ईश्वर की पूजा उसकी प्रतिमा द्वारा हो सकती है, कुछ के विचारों में ईश्वर की प्रतिमा बनाना अक्षम्य पाप है । इसे मूल तत्वों का विरोध नहीं तो क्या कहियेगा ? ऐसे धार्मिक विश्वास एक दूसरे को कैसे सह सकते हैं ? विश्वासों के ऐसे विरोध को विवशता में ही सहा जा सकता है ।”

नायर ने विरोध किया—“आप उल्टी बात कह रहे हैं । धार्मिक विश्वासों का पारलौकिक दृष्टिकोण, मानव समाज में परस्पर भय और संघर्ष की सम्भावना को कम करता है या बढ़ाता है ?”

भुवन ने अपनी बात सुना [illegible] उठाया—“तप्पी ने ठीक कहा है,
इस संसार के [illegible] को परलोक के लक्ष्य से निश्चित
सांसारिक [illegible] -बंधुत्व से प्राप्त नहीं होता,
[illegible] ों में महत्व पाप और पुण्य
[illegible], उसको आपकी धार्मिक

निष्ठा कैसे सह सकती है ?"

तप्पी बोल उठा—"सम्प्रदाय परलोक के लिये पुण्य संचय का उपदेश देते है परन्तु अधिक महत्त्व पाप न करने और न होने देने को देते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायो के विश्वासों और व्यवहारों को पाप समझता है। आप बताइये, साम्प्रदायिक निष्ठा पूरी करने मे कोई भय न हो तो वे लड़े बिन कैसे रह सकते है ?"

जहीर ने कहा—"धार्मिक आचार की निष्ठा तो व्यक्तिगत होती है। उसमे दूसरो से लड़ने की क्या जरूरत ?"

देव ने कुर्सी पर सीधे हो कर कहा—"जरूरत होती है क्योंकि धर्म-विश्वास पाप का विरोध करना भी धर्म समझता है। आप बताइये, कितने हिंदू गाय की पूजा करते है ? नगरों मे गौयें गली-गली कूड़ा और मैला खाती फिरती हैं। अधिकांश हिन्दू उन्हे तृप्त करके पुण्य कमाने की चिन्ता नहीं करते परन्तु अफ़वाह फैल जाये कि अमुक मुहल्ले मे गाय की कुर्बानी हो गयी है तो कितने हिन्दू चुप बैठ सकेंगे ? गाय के भूखे मर जाने से क्रुध नहीं होता, क्रोध इसलिये आता है कि विधर्मी ने गोहत्या का पाप कर दिया। गो पूजा का पुण्य न करने मे झगड़ा नहीं होता परन्तु गो वध के पाप के विरोध के लिये अवश्य झगड़ा होगा। ऐसे ही कोई मुसलमान चाहे जुम्मे और ईद की नमाज के लिये मसजिद मे न जाता हो परन्तु अफ़वाह फैल जाये कि ताजिया जला दिया गया है अथवा अमुक गिरी हुई मसजिद को हटाया जा रहा है, तो वे धर्म-युद्ध मे पीछे नहीं रहेंगे ! कारण यह है कि धार्मिक आचार निवाहना न निवाहना व्यक्तिगत प्रश्न होता है। साम्प्रदायिक दृष्टि से पाप न होने देना उत्तेजना का कारण बन जाता है। ऐसा पाप या अपराध न होने देना ईश्वर द्वारा निर्धारित सामूहिक कर्त्तव्य समझा जाता है।"

तप्पी बोला—"साम्प्रदायिक विश्वासों का अस्तित्व दूसरे सम्प्रदायों के विरोध मे, उनका प्रभाव न सहने मे ही होता है। हम अपने सम्प्रदाय का आचार निवाहें या न निवाहें, दूसरे सम्प्रदाय के आचार-व्यवहार से अवश्य घृणा करेंगे।"

नाथर ने कहा—"तुम धार्मिक विश्वासों की संकीर्णता का उदाहरण दे रहे हो। आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों का मुख्य प्रयोजन मनुष्यों को निस्वार्थ और उदात्त बनाना है। धार्मिक भावनाओं की उपेक्षा करके मनुष्य

नायर ने कहा—"मनुष्य ने जिस युग में क्या किया, यह युग की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और मनुष्य की तत्कालिक समझ पर भी निर्भर करता था परन्तु धार्मिक भावनाओं की मूल प्रेरणा सदा व्यापक हित की रही है। उन धर्मों ने मानवता के विकास के लिये विश्वास का बल दिया है।"

देव ने ऊँचे स्वर में कहा—"यदि अतीत में मनुष्य ने युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अपनी समझ से काम लिया है, तो हम भी आज की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अपनी समझ से काम क्यों न लें? अपनी समझ को पुराने विश्वासों से क्यों बांधें?"

तप्पी बोला—"ध्यान देने योग्य बात है कि धार्मिक विश्वासों ने मानवता के विकास में सहयोग नहीं दिया बल्कि सदा विकास को रोकने का प्रयत्न किया है। धार्मिक विश्वास सदा विज्ञान और विकास का दमन करते रहे हैं। याद रखिये, मानव-समाज का जितना विकास हुआ है, यह सब धार्मिक विश्वासों की पराजय और पुराने विश्वासों के टूटने से हुआ है।"

तप्पी ने नायर की ओर तर्जनी उठा दी—"इस तथ्य का उत्तर दो कि हिन्दू, ईसाई और मुसलमानों की धर्म-पुस्तकों में जीव, सृष्टि और मनुष्य की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में विवरण मौजूद है। धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से उन विवरणों में संदेह नहीं किया जाना चाहिए परन्तु क्या शिक्षित व्यक्ति उन विवरणों को सत्य मान सकते हैं? तुम उन्हें सत्य मानने के लिये तैयार हो? विज्ञान ने जब इस सम्बन्ध में तथ्यों को प्रकट किया तो धार्मिक विश्वासों ने उन्हें दबा देना चाहा। विज्ञान का पक्ष लेने वालों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। धार्मिक विश्वासों की सत्ता बनाये रखने और विचार-स्वातंत्र्य का दमन करने के लिये लाखों लोगों की हत्याएं की गयीं। विज्ञान का विकास धार्मिक विश्वासों और कल्पनाओं को मिथ्या प्रमाणित करके पराजित कर चुका है। तुम बताओ, यदि विज्ञान यथार्थ को जानने की प्रवृत्ति या पुराने विश्वासों से संघर्ष में पराजित हो गया होता तो तुम्हारी क्या अवस्था होती?"

भुवन हंस पड़ा—"तो यह इस समय काफी हाउस में नहीं, किसी गुफा में बैठे होते। सड़े पत्तों की शराब भैंसे के सींग में भर कर पी रहे होते।"

तप्पी ने नायर को सम्बोधन किया—"खेद है, आज भी इस देश में धार्मिक और साम्प्रदायिक भावनायें, संसारपरक यथार्थवादी दृष्टिकोण के मार्ग में अड़चन बन रही हैं।"

भुवन ने तप्पी का समर्थन किया—"आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों का प्रयोजन ही मनुष्य के विचारों और व्यवहारों को अपने अविकसित ज्ञान से बनाये हुए विश्वास में बांधे रखना और परिवर्त्तन से रोकना है।"

×

सुरेश ने उद्विग्नता प्रकट की—"आप राष्ट्र की प्रगति और निर्माण की बातें करते हैं, परन्तु इस राष्ट्र की जो विशेषता है, इसकी सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा है, उसकी रक्षा और विकास की बात नहीं सोचते! अपनी संस्कृति को पश्चिमी भौतिक सभ्यता के प्रभावों में विलीन कर देना चाहते हैं।"

भुवन ने उत्तर दिया—"हम जरूर सोचते हैं। सभ्यता और संस्कृति मनुष्य जीवन को समर्थ, संतुष्ट और आत्म-निर्भर बनाने के लिये होती है, असमर्थ और परवश रखने के लिये नहीं। धार्मिक और साम्प्रदायिक विश्वास अपने अविकसित ज्ञान से ईश्वर का नाम लेकर, मनुष्य जीवन के लक्ष्य और व्यवहार स्वयं निश्चित कर देते हैं। मनुष्य से आत्म-निर्णय का अवसर छीन लेते हैं। वे मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति में सभी प्रकार के परिवर्तनों और विकास का विरोध करते हैं।"

जहीर ने आपत्ति की—"सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यता मनुष्य के विचारों, व्यवहारों और मानसिक संतुलन से होता है। धार्मिक विश्वास मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति की आत्मा होते हैं। धार्मिक विचार धाराएँ ही मनुष्य को भय और लोभ से मुक्त कर, समाज को मनोबल, सुव्यवस्था और संतुलन देती हैं।"

भुवन ने उत्तर दिया—"भय और लोभ से मुक्ति के लिये आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों का भरोसा किया जाता है परन्तु यह आत्म-प्रवंचना है। मानव-विज्ञान के अनुसार आध्यात्म और धर्म, आदिम मनुष्यों का ऐसे भय और शक्तियों से आत्म-रक्षा का प्रयत्न था जिन्हें वे समझ नहीं सकते थे। मनुष्य भय से वचने के लिये और अपने प्रयत्नों में सफलता के लिये, अज्ञात शक्तियों की कल्पना करके उन से याचना और उनकी पूजा किया करता था। यही आध्यात्म और धर्म का आदिम रूप था। आदिमवासियों में आध्यात्म और धर्म आज भी इसी रूप में मौजूद हैं।"

देव ने भुवन को टोक कर जहीर से पूछा—"आदिम अवस्था में पायी जाने वाली जातियों में और शेष सभ्य समाज में अन्तर तो बहुत दिखायी देता है परन्तु वह अन्तर है क्या ?"

जहीर ने उत्तर दिया—"अन्तर सभ्यता का है, और क्या है ?"

देव ने आगे झुक कर कहा—"सभ्यता शब्द से अभिप्राय क्या है ? किसी समाज की सभ्यता का परिचय उसके आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास नहीं दे सकते। आदिम अवस्था में रहने वाले लोग भी अपने आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों से सन्तुष्ट रहते है और उन्हे पूर्ण समझते है। सभ्यता का विकास और स्थिति, भौतिक और पार्थिव साधनों से ही आकी जा सकती है।"

भुवन ने भी जहीर को सम्बोधन किया—"सभ्यता और संस्कृति का रूप धार्मिक विश्वासों से प्रभावित नहीं होता। विपरीत इसके सभ्यता और संस्कृति धार्मिक विश्वासो और व्यवहारो को प्रभावित करते हैं।

देव ने समर्थन किया—"बिलकुल ठीक, ज्यों-ज्यों जातिया और समाज अपने अनुभवो के आधार पर अपने विश्वासो को बदल कर, अपनी पार्थिव शक्ति और सभ्यता को बढ़ाते जाते है, उनके आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास भी बदलते जाते हैं। आध्यात्म और धार्मिक विश्वास अज्ञात शक्तियो के भय और कृपा के लोभ मे उत्पन्न हुए है और उनके अस्तित्व का आधार भी अज्ञात और परलोक के भय और लोभ होते हैं। स्वय भय और लोभ से उत्पन्न विचार भय और लोभ को कैसे मिटा सकते है ? भय और लोभ से मुक्ति, विज्ञान के विकास द्वारा मनुष्य का अज्ञान दूर होने, सामर्थ्य बढ़ने और सासारिक हित के लिये सामाजिक सुव्यवस्था मे ही मिल सकती है।"

तप्पी ने पूछा—"आप किस व्यक्ति और समाज को नैतिक और उन्नत मानियेगा ? भय और लोभ से नैतिकता का अनुसरण करने वाले को अथवा सामाजिक हित और आत्माभिमान की भावना से नीति का अनुसरण करने वाले को ?"

देव ने सुरेश और जहीर की ओर देखा—"यह साधारण अनुभव है कि ज्यो-ज्यो विज्ञान के विकास से मनुष्य यथार्थ का परिचय पाता है, उसकी सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है, आत्म-निर्भरता का विश्वास बढ़ता है। उसे व्यवस्था और नीति के मार्ग पर रखने के लिये अलौकिक शक्ति के भय और कृपा की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसा सेक्यूलर समाज इस संसार के

हित के दृष्टिकोण से नीति का अनुसरण करते जाना होता है।

सुरेश ने जिज्ञासा से कहा—"[illegible] या सांसारिक दृष्टिकोण इन्द्रिय तृप्ति और भोग की लालसा को बढ़ायेगा। ऐसी प्रवृत्ति से समाज में स्वार्थों का संघर्ष और हिंसा ही बढ़ेगी। इस प्रवृत्ति में निःस्वार्थ, सहिष्णुता और विश्व-बन्धुत्व की भावना के लिये क्या प्रेरणा हो सकती है?"

देव ने विस्मय प्रकट किया—"नैतिकता, निःस्वार्थ, सहिष्णुता और विश्व-बंधुत्व की भावना का आत्मा और पारलौकिक लक्ष्यों से क्या सम्बन्ध हो सकता है?"

सुरेश और जहीर ने भी एक स्वर में विस्मय प्रकट किया—"आप के विचार में नैतिकता, सांसारिक लोभ और व्यक्तिगत स्वार्थों के संघर्ष से उत्पन्न होती है?"

भुवन ने हामी भरी—"अवश्य! नैतिकता, भौतिक और पार्थिव दृष्टिकोण से उत्पन्न होती है। उसका विकास समाज में व्यक्तियों और समूहों को, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक से अधिक अवसर देने के लिये होता है। नैतिकता का आध्यात्म और परलोक से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक और पारलौकिक लक्ष्यों में कोई किसी का साझीदार नहीं हो सकता। नैतिकता इस संसार के पारस्परिक व्यवहारों की मान्यता होती है। समाज में सांसारिक सफलता और व्यवस्था की चिंता ही नैतिकता को विकसित कर सकती है।"

देव बोल पड़ा—"आप मानते हैं कि पश्चिम की अपेक्षा हमारे देश में आध्यात्मिक और पारलौकिक प्रवृत्ति और चिन्तन कहीं अधिक है परन्तु पश्चिम में अपने और दूसरे व्यक्तियों के अधिकारों और हितों की चेतना, सामाजिक विनय और शील, हमारे देश की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। वहां दूसरों के अधिकार और सम्मान का विचार रहता है। लोग प्रत्येक अवसर पर दूसरों की और अपनी सुविधा के विचार से स्वयं ही क्यू बना लेंगे। रेलगाड़ी या बस में स्थान न होने पर मुसाफिरों को भीतर आने से नहीं रोकेंगे। हमारे यहां सार्वजनिक सम्पत्ति, सार्वजनिक स्थान अथवा दूसरे व्यक्तियों के मकानों के सामने लगे फल-फूल सुरक्षित नहीं रहते। योरुप में दूसरों को ऐसी हानि कोई नहीं पहुंचाता। उन्हें पाप का पारलौकिक भय नहीं होता, केवल सामाजिक सुव्यवस्था और आत्म-सम्मान का विचार होता है।"

जहीर ने अस्वीकार किया—"उस भेद का कारण हमारे समाज में नैतिक

बल की कमी नहीं, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा और चेतना की कमी है।"

तप्पी हस दिया—"सामाजिक व्यवहार की शिक्षा और चेतना ही तो नैतिकता होती है, जिसकी हमारे यहा उपेक्षा है। आध्यात्मिक शिक्षा की हमारे यहा कमी नही है। कोई अशिक्षित व्यक्ति भी आप को बता देगा—यह संसार अनित्य है, साथ कोई नहीं जायगा, निर्मोह रहो। ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा हमें क्या नैतिक बल देती है ? आप नैतिक बल को सक्यूलर चेतना कहेंगे या आध्यात्मिक और पारलौकिक चेतना ?"

देव ने आगे बढ़ कर पूछा—"अनेक परस्पर-विरोधी धार्मिक विश्वास होते हुये भी एक सर्वमान्य व्यवहारिक नैतिकता की आवश्यकता है या नहीं ? आप नास्तिकों मे भी नैतिक व्यवहार की आशा करेंगे या नही और उस नैतिकता को सक्यूलर कहेंगे या नहीं ?"

भुवन निर्णय के ऊंचे स्वर में बोला—"मानव विज्ञान के अनुसार धार्मिक विश्वास, नैतिक धारणाओं को सामाजिक आवश्यकताओं और अनुभवो से अपनाते है। धार्मिक विश्वास नैतिक धारणाओं को उत्पन्न नही करते।"

जहीर जोर से हसा—"आप का मानव विज्ञान प्रत्यक्ष बात से इनकार करता है। आप कहना चाहते है—अण्डे से मुर्गी पैदा होती है, मुर्गी से अण्डा नहीं पैदा होता। नैतिक धारणा और धार्मिक विश्वास मे अंतर ही क्या है ?"

भुवन मुस्कराया—"आप हंस लें तो मैं उत्तर दूं!" और बोला, "आप समझते हैं नैतिक धारणायें, आध्यात्मिक और धार्मिक भावनाओं से उत्पन्न होती हैं। आप किसी घटना से राबिंसन क्रूसो की तरह ऐसे द्वीप में पहुंच जायं जहां कोई दूसरा व्यक्ति न हो। आप को आध्यात्म चिंतन का तो पूरा अवसर होगा परन्तु आप के व्यवहार मे नैतिकता का क्या प्रश्न हो सकेगा ? नैतिक व्यवहार की आवश्यकता और अवसर केवल अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क मे आने पर और सांसारिक वस्तुओं के सम्बन्ध में ही हो सकता है, इसलिये नैतिकता नितान्त रूप से केवल मानुषिक और सांसारिक नियम है। धार्मिक विश्वास अपने समाज मे सुव्यवस्था के लिये नैतिकता को महत्व देते हैं, उसका उपयोग भी करते है परन्तु उसे जन्म नहीं देते, न उस का विकास करते है। नैतिकता का जन्म सक्यूलर, लोकपरक सुव्यवस्था और सफलता की आवश्यकताओं से होता है। नैतिकता का लक्ष्य आध्यात्म और पारलौकिक नही होता, समाज के सब व्यक्तियों और समूहों को जीवन का अधिक से अधिक और समान अवसर देना

[illegible]

[illegible]

देव बोला—"यह आवश्यक है। अनेक धर्म-विश्वासों और मत-मतान्तरों के पृथक-पृथक मान्यताओं की प्रवृत्ति और उन पर आग्रह हमारी राष्ट्रीय भावना और सामूहिक तथा सामाजिक प्रवृत्ति में बाधा [illegible] है। आध्यात्मिक और पारलौकिक कल्पनाओं में मग्न और [illegible] के विचार में सामाजिक, सामयिक हित और उत्तरदायित्व की उपेक्षा जरूर होती है।"

नागर ने विरोध किया—"यह तो जरूरी नहीं है।"

गार्गी ने ऊंचे स्वर में कहा—"जरूरी है। हम नित्य यही बात देखते हैं। इस देश के लोगों को ईश्वर के प्रति दायित्व, स्वर्ग और मोक्ष की चिंता अधिक है, अपने और अपने पड़ोसियों के सम्मान, अधिकारों और हितों की चिंता कम है। कीर्तन में मजीरे और ढोलक बजा कर भगवान को पुकारने के लिये, वाज-मिलाद में अल्लाह को याद करने के लिये सैकड़ों आदमी इकट्ठा हो जायेंगे। धार्मिक काम में सहयोग देने के लिये सब को उत्साह होगा परन्तु गली में गन्दगी सड़ती रहे, बाजार की नालियां गंधाती रहें, खाद्य पदार्थों में अस्वास्थ्यकर मिलावट होती रहे; नगर, कस्बे और मुहल्ले में बीमारी फैल जाने की आशंका हो जाये तो उस की चिंता और उपाय के लिये सहयोग का उत्साह किसी में नहीं होगा।"

देव ने पूछा—"जीवन का लक्ष्य इस संसार में स्वास्थ्य, सामर्थ्य और संतोष न मान कर आध्यात्मिक और पारलौकिक समझ लेने का परिणाम आप को दिखाई नहीं देता। जब भी किसी सार्वजनिक कार्य के लिये, स्वास्थ्य-चिकित्सा की सुविधायें जनता को देने के लिये, शिक्षा प्रसार के लिये, सड़कों

और बिजली का विकास करने के लिये सरकार की ओर से कोई कर लगाया जाता है तो त्राहि-त्राहि मच जाती है। ऐसे कर से बचने के लिये धाधली करने में कोई लज्जा अनुभव नहीं करता। लोग ऐसी धांधली को जान कर भी उस की भर्त्सना नहीं करते। सब अपने आप को निर्द्वन्द्व समझते हैं। यदि इन कामों में जनता की रुचि हो, जनता इसे अपना काम समझे, इनमें अपना लाभ समझे तो ऐसे करों को अत्याचार नहीं समझेगी ?"

सुरेश बोल पड़ा—"आप बड़े राजभक्त हैं, क्या आप टैक्सों को अभी और बढ़वाना चाहते हैं ?"

देव ने कहा—"टैक्स बढ़वाना कौन चाहता है ? प्रश्न सांसारिक हित और पारलौकिक विश्वासों के सम्बन्ध में जनता के दृष्टिकोण और व्यवहार का है। आप किसी भी इनकमटैक्स के इन्स्पेक्टर, इनकमटैक्स के वकील से पूछ लीजिये कि टैक्स न देने के लिये क्या-क्या कानूनी प्रपंच गढ़े जाते हैं। हमें प्रत्येक सरकारी कर बुरा लगता है परन्तु सार्वजनिक कार्यों के लिये लगाये गये करों के बोझ से हाहाकार करने वाले लोग, सरकारी कर की रकम से दुगनी-तिगुनी रकम बहुत प्रसन्नता से परलोक-लाभ के लिये साम्प्रदायिक कार्यों में दे देते हैं। मुहल्ले में कीर्तन, रामायण की कथा, मिलाद और वाज़ कराने के लिये जब चाहें आप चन्दा उगाह सकते हैं। ऐसे कामों में चन्दा न दें तो आपको जनता के सामने लज्जित होना पड़ेगा परन्तु मुहल्ले में स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य सुविधाओं के लिये न किसी को कुछ करने का ध्यान आयेगा, न कोई चन्दा देगा, न कोई सार्वजनिक चोरी के विरुद्ध आवाज उठायेगा। यदि धार्मिक विश्वास से पारलौकिक लाभ के लिये व्यय की जाने वाली शक्ति और धन, जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा में खर्च हो रहा होता तो हमारी क्या अवस्था होती ?"

जहीर ने कहा—"धार्मिक विश्वास के लिये दिया गया धन व्यक्ति को कितना संतोष देता है। इसे धन नष्ट किया जाना नहीं कहा जा सकता।"

तप्पी बोला—"क्यों नहीं कहा जा सकता। हिन्दू के पारलौकिक दृष्टिकोण को आप इस्लाम और ईसाइयत के विश्वासों के दृष्टिकोण से देखिये। इस्लाम के पारलौकिक अनुष्ठान को हिन्दू और ईसाई धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से देखिये। अन्य सम्प्रदायों का बहुमत प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को अंध-विश्वास कहेगा। क्या बहुमत का कुछ मूल्य ही नहीं ? व्यक्तिगत धार्मिक अंध-विश्वास का बहुत मूल्य है ?"

[illegible]

[illegible]

देव बोला—"[illegible] है। [illegible] सामाजिक, सांसारिक हित और उत्तरदायित्व की उपेक्षा जरूर होती है।"

नागर ने विरोध किया—"यह तो जरूरी नहीं है।"

[illegible] ने ऊंचे स्वर में कहा—"जरूरी है। हम नित्य यही बात देखते हैं। इस देश के लोगों को ईश्वर के प्रति दायित्व, स्वर्ग और मोक्ष की चिंता अधिक है, अपने और अपने पड़ोसियों के सम्मान, अधिकारों और हितों की चिंता कम है। कीर्तन में मजीरे और ढोलक बजा कर भगवान को पुकारने के लिये, नाज-मिलाद में अल्लाह को याद करने के लिये सैकड़ों आदमी इकट्ठा हो जायेंगे। धार्मिक काम में सहयोग देने के लिये सब को उत्साह होगा परन्तु गली में गन्दगी सड़ती रहे, बाजार की नालियां गंधाती रहें, खाद्य पदार्थों में अस्वास्थ्यकर मिलावट होती रहे; नगर, कस्बे और मुहल्ले में बीमारी फैल जाने की आशंका हो जाये तो उस की चिंता और उपाय के लिये सहयोग का उत्साह किसी में नहीं होगा।"

देव ने पूछा—"जीवन का लक्ष्य इस संसार में स्वास्थ्य, सामर्थ्य और संतोष न मान कर आध्यात्मिक और पारलौकिक समझ लेने का परिणाम आप को दिखाई नहीं देता। जब भी किसी सार्वजनिक कार्य के लिये, स्वास्थ्य-चिकित्सा की सुविधायें जनता को देने के लिये, शिक्षा प्रसार के लिये, सड़कों

और बिजली का विकास करने के लिये सरकार की ओर से कोई कर लगाया जाता है तो त्राहि-त्राहि मच जाती है। ऐसे कर से बचने के लिये धाधली करने में कोई लज्जा अनुभव नहीं करता। लोग ऐसी धाधली को जान कर भी उस की भर्त्सना नहीं करते। सब अपने आप को निर्द्वन्द्व समझते है। यदि इन कामों में जनता की रुचि हो, जनता इसे अपना काम समझे, इनमें अपना लाभ समझे तो ऐसे करों को अत्याचार नहीं समझेगी?"

सुरेश बोल पड़ा—"आप बड़े राजभक्त है, क्या आप टैक्सो को अभी और बढ़वाना चाहते हैं?"

देव ने कहा—"टैक्स बढ़वाना कौन चाहता है? प्रश्न सासारिक हित और पारलौकिक विश्वासों के सम्बन्ध में जनता के दृष्टिकोण और व्यवहार का है। आप किसी भी इनकमटैक्स के इन्स्पेक्टर, इनकमटैक्स के वकील से पूछ लीजिये कि टैक्स न देने के लिये क्या-क्या कानूनी प्रपच गढ़े जाते है। हमें प्रत्येक सरकारी कर बुरा लगता है परन्तु सार्वजनिक कार्यों के लिये लगाये गये करों के बोझ से हाहाकार करने वाले लोग, सरकारी कर की रकम से दुगनी-तिगुनी रकम बहुत प्रसन्नता से परलोक-लाभ के लिये साम्प्रदायिक कार्यों में दे देते हैं। मुहल्ले में कीर्तन, रामायण की कथा, मिलाद और वाज कराने के लिये जब चाहे आप चन्दा उगाह सकते है। ऐसे कामों में चन्दा न दें तो आपको जनता के सामने लज्जित होना पड़ेगा परन्तु मुहल्ले में स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य सुविधाओं के लिये न किसी को कुछ करने का ध्यान आयेगा, न कोई चन्दा देगा, न कोई सार्वजनिक चोरी के विरुद्ध आवाज उठायेगा। यदि धार्मिक विश्वास से पारलौकिक लाभ के लिये व्यय की जाने वाली शक्ति और धन, जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा में खर्च हो रहा होता तो हमारी क्या अवस्था होती?"

जहीर ने कहा—"धार्मिक विश्वास के लिये दिया गया धन व्यक्ति को कितना सतोष देता है। इसे धन नष्ट किया जाना नहीं कहा जा सकता।"

तप्पी बोला—"क्यों नहीं कहा जा सकता। हिन्दू के पारलौकिक दृष्टिकोण को आप इस्लाम और ईसाइयत के विश्वासों के दृष्टिकोण से देखिये! इस्लाम के पारलौकिक अनुष्ठान को हिन्दू और ईसाई धार्मिक सस्कारों की दृष्टि से देखिये। अन्य सम्प्रदायों का बहुमत प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को अंध-विश्वास कहेगा। क्या बहुमत का कुछ मूल्य ही नहीं? व्यक्तिगत धार्मिक अध-विश्वास का बहुत मूल्य है?"

हो सकते हैं। हमारी जनता चुनाव के समय राजनीतिक, आर्थिक और भाषा के सम्बन्धों को नहीं, साम्प्रदायिक सम्बन्धों को ही महत्व देती है। एक ही बोली बोलने वाले लोग साम्प्रदायिक भावना से अपनी-अपनी भाषायें अलग बताते हैं। साम्प्रदायिकता पृथकता की भावना को इतना बढ़ा देती है कि एक ही भाषा-भाषियों में पृथक साम्प्रदायिक राज्यों की मांगें उठने लगती हैं। साम्प्रदायिक भावनायें हमें सन्तुलन नहीं दे रही, हमारी राष्ट्रीय भावना में अड़चन बन रही हैं। हमने संविधान में अपने राष्ट्र की व्यवस्था सक्यूलर, लोकपरक अथवा धर्म-निरपेक्ष स्वीकार की है परन्तु हम जनता का दृष्टिकोण लोकपरक नहीं बना सके। उसी का परिणाम भोग रहे हैं।"

सुरेश ने पूछा—"राष्ट्र को सक्यूलर या लोकपरक कहकर आप जनता से आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता छीन लेना चाहते हैं?"

जहीर ने चेतावनी दी—"प्रजातंत्र का आधार व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वासों की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्वपूर्ण अंग है।"

तभी हंस पड़ा—"धार्मिक विश्वासों को चरम सीमा तक निबाह सकने के लिये काफिरों और म्लेच्छों को निर्मूल करने की स्वतंत्रता भी आवश्यक है।"

जहीर ने आपत्ति की—"यह तर्क नहीं, कुतर्क है। ऐसी स्वतंत्रता कौन मांग रहा है?"

देव बोला—"कुतर्क नहीं है, यह तर्क-संगत कल्पना और संभावना है।" उसने सुरेश और जहीर की ओर तर्जनी उठायी, "आप इनकार नहीं कर सकते। हमारे देश में साम्प्रदायिक भावनायें हैं, साम्प्रदायिक राजनीतिक दल भी हैं। सब साम्प्रदायिक दल अपनी-अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाने का यत्न कर रहे हैं। कोई भी सम्प्रदाय शासन की शक्ति पाकर शासन व्यवस्था को अपने धार्मिक विश्वासों के प्रसार का साधन बनाकर, देश में दूसरे लोगों का जीवन असंभव कर देगा। उदाहरण पड़ोसी राज्य में देख लीजिये!"

जहीर ने टोक दिया—"क्या शेखचिल्लियों के सपने देख रहे हो! क्या सभ्यता के इस युग में साम्प्रदायिक राज्यों की कल्पना की जा सकती है?"

देव ने कहा—"करनी नहीं चाहिये परन्तु राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों को पूरा करने के लिये धार्मिक उन्माद को साधन बनाया जा सकता है। आप को साम्प्रदायिक राज्य की कल्पना शेखचिल्ली का स्वप्न जान पड़ती है लेकिन

आपके देखते-देखते पाकिस्तान बना है, सिक्खिस्तान की मांग क्रिप्स कमीशन के सामने की जा चुकी है और पंजाबी सूबे के लिये आन्दोलन हो चुका है। इस अनुभव से अंध-विश्वासों, साम्प्रदायिक संगठनों के राष्ट्रघाती प्रभाव को दूर करना आवश्यक है।"

जहीर बोला—"हमारे यहां ऐसी आशंका नहीं है। आप व्यर्थ आशंका में जनता की धार्मिक भावनाओं और विचार स्वतंत्रता का दमन करना चाहते हैं।"

देव ने प्रश्न किया—"आप मनुष्य को विचारों की स्वतंत्रता देना चाहते हैं या धार्मिक विश्वासों को जनता के विचारों के दमन की स्वतंत्रता देना चाहते हैं ?"

जहीर ने आपत्ति की—"धार्मिक विश्वासों की स्वतन्त्रता और विचार स्वतन्त्रता समानार्थक हैं। धार्मिक विश्वासों की स्वतन्त्रता को विचार स्वातन्त्र्य का दमन कैसे कहा जा सकता है ? स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता का दमन कैसे कर सकती है ?"

तप्पी हंस पड़ा—"वाह क्यों नहीं, सशस्त्र व्यक्ति की स्वतन्त्रता निःशस्त्र जनता की स्वतन्त्रता का दमन करेगी। ठगी करने वालों की स्वतन्त्रता ईमानदार जनता की स्वतन्त्रता का दमन करेगी।"

देव तप्पी को सुनने का संकेत कर बोला—"धार्मिक विश्वासों की सत्ता और विचार स्वतन्त्रता मूलतः परस्पर-विरोधी वस्तुऐं हैं। धार्मिक स्वतन्त्रता का अर्थ है—अपने विचारों पर धार्मिक विश्वासों के बन्धन स्वीकार करना, दूसरों को ऐसे विश्वासों के बन्धन स्वीकार करने की प्रेरणा देना और उस प्रयोजन से धार्मिक संगठन बना सकना। धार्मिक विचारों की स्वतंत्रता छीनने की बात कोई नहीं कहता। हम तो देश के मनुष्यों के हित और विकास के लिये विचारों की स्वतंत्रता का वातावरण चाहते हैं।"

सुरेश ने विरोध किया—"क्या विचार स्वतन्त्रता के नाम पर विश्वासों और धार्मिक विश्वासों की स्वतन्त्रता छीन लेना चाहते हैं ? धार्मिक विश्वास भी तो विचार हैं ! आप हमें नास्तिकों की डिक्टेटरशिप में पशु बना देना चाहते हैं ?"

भुवन ने सुरेश को सुनने के लिये संकेत कर कहा—" विचारों और विश्वासों की स्वतन्त्रता के नारों का अर्थ क्या है ? आप मिथ्या विश्वासों की अथवा असामाजिक और जनद्रोही विचारों की स्वतन्त्रता के लिये भी नारे लगाने को तैयार हो जायेंगे ?" भुवन का स्वर उंचा हो गया, "यदि कोई सती प्रथा के प्रचार का नारा लगाना चाहें तो ?"

ज़हीर ने भी ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"तुम तो फिर शेखचिल्ली जैसी बातें करते हो। यह कोई तर्क नहीं है।"

भुवन फिर ऊंचे स्वर में बोला—"यह बात शेखचिल्ली जैसी है ? आप ने खुद बताया था, पिछले साल मुहर्रम के मेले में गंदा जल पीने से हैजा फैला था। आप के मौलवियों ने उसका कारण, ताजियों को ट्रक पर ले जाने के धर्म-विरोधी कार्य के लिये ईश्वरीय दण्ड बताया है। इस देश में लोग धार्मिक विश्वास के कारण चेचक और हैजे के टीके लगवाने में देवी-देवताओं की अप्रसन्नता की आशंका समझते हैं। परीक्षा और इन्टरव्यू में सफलता के लिये हनुमान जी पर भरोसा करना चाहते हैं। क्या आप ऐसे धार्मिक विश्वासों के प्रचार की और उन में आस्था रखने की स्वतन्त्रता को समाज के लिये हितकर समझते हैं ? धार्मिक विश्वासों और अन्ध-विश्वासों में भेद की कसौटी विश्वासों को नहीं, तर्क और विज्ञान को ही मानना पड़ेगा। क्या विचारों की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिये आप मिथ्या-विश्वासों से जनता की मुक्ति आवश्यक नहीं समझते ?"

तप्पी भुवन को रोक कर बोला—"यह चाहते है, सत्ता और शासन सक्यूलर रहे, किसी भी सम्प्रदाय के हाथ में नहीं रहे। सब सम्प्रदायों को अपनी-अपनी धार्मिक भावनाओं से सगठित होकर लड़ते रहने की समान स्वतंत्रता रहे। लेकिन यदि कोई सम्प्रदाय शासन अपने हाथ में ले लेने में सफल हो जाये तो उसे संविधान को बदलने से कौन रोक सकेगा ? राष्ट्र साम्प्रदायिक बन जायेगा। जनता की मन स्थिति और राष्ट्र के कानून में कितना बड़ा अन्तर्विरोध है—राष्ट्र का संविधान और शासन सक्यूलर हो परन्तु जनता की भावनायें साम्प्रदायिक हों।"

भुवन ने कहा—"जनता की भावनायें साम्प्रदायिक हैं, जनता प्रत्येक प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार और व्यवहार करती है। यदि शासन की नीति और व्यवहार धर्म-निरपेक्ष रहे तो शासन को जनता का सहयोग कैसे मिल सकता है ? शासन जनता की जो कुछ सांसारिक भलाई करना चाहे, वह जनता के असहयोग और उपेक्षा के बावजूद करनी होगी।"

देव ने पूछ लिया—"सरकार और जनता में सहयोग किस आधार पर हो सकता है ? जनता स्वर्ग, बहिश्त और मोक्ष पा लेने की जल्दी में है, सरकार जनता को जल्दी वहां जाने नहीं देना चाहती।"

हो जाने से ऐसी समस्यायें समाप्त हो गयी हैं । अब वे लोग पारलौकिक चिन्ता से इस लोक की उपेक्षा नहीं करते । ईश्वर के आदेशों को पूरा करने के बजाय परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक सूझ-बूझ से, परस्पर सहयोग से इस संसार को ही स्वर्ग बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं ।"

भुवन ने कहा—"धार्मिक स्वतन्त्रता तो हमें विदेशी शासन के समय भी थी । उसका फल राष्ट्र में परस्पर अविश्वास और असहयोग की भावना बढ़ना ही हुआ । धार्मिक स्वतन्त्रता हमारी सामाजिक सामर्थ्य बढ़ाने में उपयोगी नहीं हो सकी । अब जनता को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गयी है परन्तु जनता पुराने अभ्यासों के कारण उसके उपयोग में रुचि नहीं ले रही । जनता न तो व्यवस्था के निर्माण में, न व्यवस्था के संचालन में वैयक्तिक उत्तरदायित्व से सहयोग देती है । जब भी राजनीतिक अधिकार के उपयोग का अवसर आता है, साम्प्रदायिक भावना सामने आ जाती है ।"

जहीर खिन्न होगया—"आप तो फासिस्ट हैं । राष्ट्र-निर्माण के नाम पर विचारों की स्वतंत्रता को समाप्त कर देना चाहते हैं ।"

देव ने उत्तर कर कहा—"आप फैसिज्म या तानाशाही को बुरा समझते हैं तो सबसे पहले धार्मिक विश्वासों की तानाशाही सत्ता को दूर कीजिये । वैयक्तिक स्वतन्त्रता और विचार स्वतन्त्रता का दमन धार्मिक विश्वासों की सत्ता से अधिक कोई दूसरी शक्ति नहीं कर सकती । मनुष्य को वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों और तर्क के आधार पर विचार न करने देने से भयंकर दमन और क्या हो सकता है ? अलौकिक सत्ता और धार्मिक विश्वासों की शिक्षा का अर्थ विचारों की स्वतन्त्रता उत्पन्न न होने देना है । आप यदि वास्तव में जनता को वैयक्तिक और विचारों की स्वतन्त्रता देना चाहते हैं तो जनता में धार्मिक विश्वासों की शिक्षा के बजाय तर्क और परख के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना चाहिये । धार्मिक विश्वास और विचार स्वातन्त्र्य परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां हैं ।"

तप्पी ने कहा—"धार्मिक विश्वास रखने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्ताक्षेप करने के लिये कोई नहीं कहता परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को सार्वजनिक जीवन में प्रोत्साहित करना अवश्य हानिकारक है । जब व्यक्ति दूसरों को साम्प्रदायिक भावना से अपने और पराये समझने लगते हैं । उदाहरणतः मुहल्ले सम्प्रदायों में बटने लगते हैं या एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय

प्रमाणित दृष्टिकोण देता है । सक्यूलर राष्ट्रों में बच्चों की शिक्षा उसी यथार्थवादी दृष्टिकोण से आरम्भ होनी चाहिये । सक्यूलर समाज को आस्तिकता-नास्तिकता के विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है ?"

तप्पी बोल पड़ा—"जो बात प्रमाणित नहीं है, उसके विषय में क्यों कुछ कहा जाये ? पहले आप बच्चों को विश्वास दिलाते हैं कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है । सुख-दुख, रोग-शोक, सफलता-असफलता उसके निर्णय और कृपा से होते हैं । बच्चों के नौजवान हो जाने पर उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा देंगे । उन्हें सृष्टि और जीवों के विकास की प्रक्रिया का वैज्ञानिक दृष्टिकोण बतायेंगे । बचपन में सिखाया जाता है—दुख और रोगों में ईश्वर का भरोसा करो, जवान होकर वे सीखते हैं कि स्वस्थ रहने और रोगों से बचने के लिये मलेरिया, हैजे और क्षय के कीटाणुओं से बचो । ईश्वर की इच्छा और विधान से उत्पन्न हुये रोगों के कीटाणुओं का संहार करना समाज और मानवता की सेवा है । पहले बच्चों के मस्तिष्क पर भ्रम की तह जमाइये, फिर उसे धोने का प्रयत्न कीजिये । नवयुवक भौतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, जीव-विज्ञान और मानव-विज्ञान पढ़ते समय बौखला जाते हैं—वैज्ञानिक शिक्षा में उन्हें ईश्वर का हाथ कहीं दिखाई नहीं देता परन्तु बचपन में पाये संस्कारों के कारण सोचते हैं—ईश्वर है अवश्य । इन्हीं मिथ्या-विश्वासों को आप धार्मिक विश्वासों और धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता कहते हैं ?"

देव बोला—"हमारे समाज में उल्टी प्रक्रिया चलती है । बचपन में लोगों को अंध-विश्वास और साम्प्रदायिकता सिखलाई जाती है और जवान हो जाने पर सहिष्णुता और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का उपदेश दिया जाता है । जो शिक्षा-पद्धति वैज्ञानिक शिक्षा देना चाहती है, वही आरम्भ में ईश्वर की सत्ता के विश्वास जमावे, यह बहुत बड़ा अंतर्विरोध है ।"

तप्पी फिर बोला—"जिन स्कूलों में बच्चों को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से शिक्षा दी जाती है, उन्हें सरकारी अनुदान हर्गिज नहीं दिया जाना चाहिये । शिक्षा का आरम्भ यथार्थवादी, वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टिकोण से होना चाहिये । सरकारी खर्च पर साम्प्रदायिक भ्रमों की नींव क्यों डाली जाय ? बच्चों को स्वतन्त्र विचार मानव ही क्यों न बनने दिया जाय !"
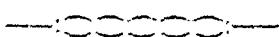
साहित्यिक गोष्ठी

भुवन के यहा कभी-कभी साहित्यिक गोष्ठी होती रहती है। उसका विचार है कि किसी भी कलात्मक रचना का उचित मूल्यांकन चार आदमियों की परख से, उसके गुण-दोष का विवेचन करने से ही हो सकता है। गलत बात सुन कर ही सही बात तक पहुंचने का संकेत मिल सकता है। बातो मे बातों की परतें खुलती हैं।

भुवन के अनुरोध से देव भी गोष्ठी मे आ जाता है। देव यूनीवर्सिटी मे इतिहास का अध्यापक है। देव के लिहाज और अनुरोध से उमापति जी भी गोष्ठी मे आ गये थे। उमापति जी जमे हुये नामवर लेखक हैं। वे गोष्ठी में आ जायें तो उदीयमान लेखकों का उत्साह और गोष्ठी का महत्व बढ जाता है परन्तु उमापति जी को ऐसी गोष्ठी का कोई उपयोग नही जान पडता। वे अपनी रचना गोष्ठी मे नही पढते। उनका विचार है कि वे नौसिखियों से कुछ सीख नही सकते। यदि वे किसी का सुझाव स्वीकार करें तो रचना मे उन की मौलिकता क्या रहे! उन की कला की विशेषता तो दूसरो से अप्रभावित, उन की अपनी ही सूझ और अपनी अभिव्यक्ति के मौलिक ढग मे है। कला यदि सुझावों से ढाचो मे ढाल कर बनायी जाये तो वह निर्देशन द्वारा 'मास प्रोडक्शन' की चीज हो जायेगी। ऐसी कला में कलाकार की स्वच्छन्द प्रतिभा अभिव्यक्त नहीं होगी।

मुन्नी कहानी पढ कर सुना रही थी तो उमापति जी सोफा-कुर्सी की पीठ पर लुढके हुये मुह पर हाथ रख कर जम्हाइया ले रहे थे।

मुन्नी ने गोष्ठी मे पढ़ने से पहले कहानी तप्पी को सुना ली थी। तप्पी ने उसका साहस बढाया था—बहुत अच्छी बन पड़ी है, इसे गोष्ठी मे पढना। मुन्नी कहानी पढ रही थी तो प्रमाद जी अंगूठा दांतो मे दबाये बहुत ध्यान से सुन रहे

की दूकानों का बायकाट करने लगते हैं तो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन विशृंखलित और आतंकित हुए बिना कैसे रह सकता है ! ऐसी विरोधी भावनाओं को समाप्त हो जाना चाहिये या वे विकट रूप ले लेंगी ।"

देव बोला—"आप मुहल्लों की बात कर रहे हैं । साम्प्रदायिक दंगे के समय प्रत्येक परिवार को अपने बच्चों पर संकट अनुभव होने लगता है परन्तु संकट के बीज वह स्वयं ही बोते हैं । बचपन से ही हमें सिखाया जाता है कि दूसरे सम्प्रदाय हमारे शत्रु हैं, हमें उन से कोई सम्पर्क नहीं रखना है । हमारी और उनकी लड़ाई स्वाभाविक है । इस पर हम यह चाहते हैं कि साम्प्रदायिक दंगे न हों । हम यह नहीं सोचते कि अमुक व्यक्ति से हमें या समाज को क्या सहायता और सहयोग मिल सकता है ? हमारे मन में यही चेतना बनी रहती हैं कि वह स्वर्ग में जाने वाली बिरादरी में से है या वहिश्त में जाने वाली बिरादरी में से । हालांकि वहां जाना अकेले ही पड़ेगा ।"

तप्पी ने कहा—"दुर्भाग्य यह है कि हमारे देश के राजनीतिक दल भी जनता का दृष्टिकोण संसारपरक और यथार्थवादी बनाने का यत्न नहीं करते । चुनाव के समय जनता के सामने राजनीतिक, आर्थिक और शासन व्यवस्था में सुधार के प्रश्न जाने चाहिये परन्तु उस समय राजनीतिक दल साम्प्रदायिक भावनाओं से लाभ उठाने के लिये अराष्ट्रीय साम्प्रदायिक मांगों का समर्थन करने लगते हैं । अपने आप को धर्म-निरपेक्ष कहने वाले राजनीतिक दल भी क्षणिक लाभ के लिये साम्प्रदायिक भावना से पृथक भाषा, पृथक साम्प्रदायिक शिक्षा और पृथक प्रदेशों की मांग का समर्थन करने लगते हैं । वे यह नहीं सोचते कि साम्प्रदायिक भावनायें बढ़ेंगी तो राष्ट्र पृथक साम्प्रदायिक शिविरों में बंट कर रहेगा । सब लोग अपने-अपने साम्प्रदायिक शिविरों में चले जायेंगे तो उनकी धर्म-निरपेक्ष नीति का साथ कौन देगा ?"

भुवन ने खेद प्रकट किया—"हमारे देश की राजनीति में यह कितना बड़ा अन्तर्विरोध है । सरकार और देश के सभी मुख्य राजनीतिक दल-कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, जनसंघ, कम्युनिस्ट, स्वतंत्र पार्टी, अपने आपको सक्यूलर, धर्म निरपेक्ष कहते हैं परन्तु साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों और भावनाओं को दूर करने का यत्न कोई नहीं करता । हमारे राजनीतिक क्षेत्र में अब भी ब्रिटिश सरकार की साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने वाली नीति चल रही है । उस नीति को समाप्त करने के लिये कोई आन्दोलन नहीं उठाता ।"

जहीर ने कहा—"सरकार साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन कैसे दे रही है ?"

भुवन ने उत्तर दिया—"आप को नहीं दीखता, हमारे देश में बच्चों की शिक्षा साम्प्रदायिक होती है। स्कूल प्रायः किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते है और सरकार सबको आर्थिक सहायता देती है, बचपन से ही दृष्टि-कोण साम्प्रदायिक बना दिया जाता है।"

जहीर ने आपत्ति की—"सरकारी स्कूलों में किसी सम्प्रदाय की शिक्षा नहीं दी जाती।"

तप्पी बोला—"जरूर दी जाती है। सरकार सब सम्प्रदायों के लिये ग्राह्य, अस्पष्ट से ईश्वर की सत्ता में विश्वास की शिक्षा देती है। तुमने बच्चों को पढ़ायी जाने वाली बेसिक रीडरें देखी है ? उन सब में सृष्टि, जीवों और मनुष्यों को बनाने वाले ईश्वर पर भरोसे का उपदेश दिया जाता है। ईश्वर के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विश्वास ही तो सब सम्प्रदायों के बीज है। ईश्वर में विश्वास साम्प्रदायिक कल्पना के बिना नहीं रह सकता।"

जहीर हस पड़ा—"आप को तो हर बात में अल्लाह-ईश्वर से ही झगड़ा करना है।"

तप्पी बोला—"भाई जान, हमें ईश्वर से झगड़ा नहीं करना बल्कि ईश्वर के नाम पर होने वाला झगड़ा रोकना है।"

सुरेश उत्तेजना से बोला—"ईश्वर विश्वास यदि सम्प्रदायों का मूल है तो नास्तिकता भी एक सम्प्रदाय है। सरकारी स्कूलों में नास्तिकता की शिक्षा बच्चों को क्यों दी जाये ?"

जहीर ने सुरेश का समर्थन किया—"बिलकुल सही है। वैज्ञानिक शिक्षा का अर्थ नास्तिकता की शिक्षा नहीं है। विज्ञान ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करता परन्तु विज्ञान यह भी प्रमाणित नहीं करता कि ईश्वर नहीं है। आप सरकार से नास्तिकता के प्रचार की माग नहीं कर सकते !"

भुवन ने सुनने के लिये संकेत—"नास्तिकता के प्रचार की माग कोई नहीं करता है। विज्ञान न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है, न उससे इन्कार करता है। वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति को ईश्वर के होने या न होने के सम्बन्ध में शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लेने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर के सम्बन्ध में हम प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कह सकते तो इस झगड़े में क्यों पड़ें ? सृष्टि, ससार, समाज और नैतिकता हमारे लिये यथार्थ हैं। इनके सम्बन्ध में विज्ञान

थे। दो श्रोताओं ने कहानी को अच्छी बना दिया तो प्रसाद जी को बोलना पड़ा—"इस रचना को एक अध्यापिका की घरेलू कठिनाइयों का वर्णन कहा जा सकता है, अध्यापिका के प्रति सहानुभूति हो सकती है परन्तु इसमें कहानी-पन क्या है ?"

एक 'नये' कहानी लेखक ने प्रसाद जी से प्रश्न किया—"कहानी आप किस रचना को कहेंगे ? समस्या को परिस्थितियों द्वारा घटना के रूप में उपस्थित किया जाये तो उसे कहानी नहीं कहियेगा ?"

तप्पी ने कहा—"यदि घटना के वर्णन से भावोद्रेक हो सके या चिन्तन की प्रेरणा मिल सके तो उसे सफल कहानी कह सकना चाहिये।"

प्रसाद जी के मित्र ने मुंह में छाली कुचलते हुये कह दिया—"कहानी तो है पर इसकी अपील व्यापक नहीं। इस कहानी में क्या कलात्मकता है ?"

भुवन और देव ने एक साथ उमापति जी से अनुरोध किया—"आप कहिये, आप कुछ बताइये !"

उमापति जी ने घुटने को सहलाते हुये ऊंघ या विजया के प्रभाव से गुलाबी नेत्र झपक कर उत्तर दिया—"अरे हम क्या कहें, ठीक है, अच्छा प्रयत्न है।"

प्रसाद जी ने प्रतिष्ठित लेखक की बात अपनी राय के विरुद्ध जान पड़ने के कारण जिज्ञासा की—"प्रयत्न तो हैं परन्तु कहानी में कहानीपन होना चाहिये ; वही वस्तु रस-बोध उत्पन्न कर सकती है। उसी के बलपर कहानी जम सकती है।"

मुन्नी गुमसुम सुनती जा रही थी। उसकी ओर से तप्पी ने पूछ लिया—"कहानी के जम सकने का क्या मतलब ? इस कहानी में पत्नी ब्राह्म मुहूर्त से घर को झाड़ने-बुहारने, पति और बच्चों के लिये भोजन की व्यवस्था करने में व्यस्त हो जाती है। सात घंटे के लिये अध्यापिका का काम करने चली जाती है। लौट कर आते ही फिर बच्चों और पति की सेवा में व्यस्त हो जाती है। बच्चों और पति के सो जाने पर उनके कपड़े धोती है। स्कूल से लायी हुई कापियां देखने में व्यस्त हो जाती है। वह अपने ग्रेजुएट पति की अपेक्षा पच्चीस रुपये अधिक कमाती है। इस पर भी वह पति की डांट-फटकार सुनती है क्योंकि पति स्वामी है। स्त्री पर परिवार की जिम्मेदारी पति की अपेक्षा अधिक है, वह पति की अपेक्षा अधिक कठिनाई झेलती है, अधिक परिश्रम करती है तथा अधिक कमाती है परन्तु गृहस्थ का स्वामी पति है। स्त्री दासी मात्र है। वास्तविकता और समाज की मान्यता में यह वैषम्य आपको ध्यान देने

योग्य नही जान पड़ता ?"

प्रसादजी ने कहा—"ध्यान देने योग्य तो है परन्तु पाठक को रसोद्रेक चाहिये।"

देव बोला—"जो ध्यान को, अनुभूति को पकड ले, वही रोचकता है अन्यथा सीता का विलाप भी आप को रोचक नही लगना चाहिये। रागात्मक अनुभूति उत्पन्न कर सकना ही साहित्य का गुण है।"

उमापति जी बोल पड़े—"यो चाहो तो हर टिप्पणी को कहानी मान लो" और अपनी बात पर स्वयं ही-हो, हो कर हस दिये, "पर कहानी उसे ही कहना चाहिये, जिस के रस मे व्यापकता हो, स्थायित्व हो, पाठक मे निरन्तर समवेदना उत्पन्न कर सके, उसे मानसिक आनन्द दे सके।"

तप्पी ने पूछ लिया—"रस की व्यापकता, स्थायित्व और निरन्तर समवेदना से क्या अभिप्राय ?"

उमापति जी ने सतर्क होकर दोनो हाथ कुर्सी की बाहो पर दबा लिये और गुलाबी आखो को पूरा खोल कर बोले—"रस की व्यापकता और स्थायित्व वर्ग विशेष को अपील करने वाले साहित्य मे नही हो सकते। 'फ्रैंकली स्पीकिंग' यह कहानी वर्किंग वोमेन की कहानी है, उसकी कठिनाइयो के लिये दुहाई है, वर्किंग क्लास की ही कहानी है। आप इस कहानी को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अच्छी कह सकते है परन्तु इसे स्थायी मूल्य की कहानी नही कहा जा सकता।"

भुवन ने झिझक कर सिर खुजाया और पूछ लिया—"प्रगतिवादी साहित्य स्थायी मूल्य का नही हो सकता ?"

उमापति जी ने विवाद मे अनिच्छा के संकेत मे हाथ हिलाकर कहा—"वाद का साहित्य स्थायी नही हो सकता, न प्रगतिवाद का, न प्रतिक्रियावाद का। स्थायी साहित्य और कला मानवता के स्थायी और व्यापक मूल्यों का होता है, वर्गों का नही।"

प्रसाद जी ने उमापति जी का समर्थन किया—"बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक ! ठोस और स्थायी साहित्य मानवता की गहरी अनुभूतियों का होता है। तभी तो मनुष्य-मात्र उससे रस ले सकता है।"

देव उमापति जी के प्रति सम्मान मे चुप था परन्तु प्रसाद जी से उसने पूछ लिया—"मानव-मात्र से क्या अभिप्राय है ? ऐसा कौन मानव होगा जो किसी वर्ग मे न हो ?"

उत्तर उमापति जी ने दिया—"वर्ग और वर्ग-संघर्ष तो आनी-जानी चीजें हैं।

मानवता वर्गों से पूर्व भी थी" उन्होंने भुवन की ओर हाथ बढ़ाकर कहा, "जब ये लोग समाज को श्रेणीहीन, वर्गहीन बना लेंगे तब भी मानवता रहेगी।"

भुवन उमापति जी के प्रति सम्मान के बावजूद चुप न रह सका, बोला—"क्षमा कीजिये, साहित्य यदि समाज की वास्तविकता का दर्पण है और समाज में वर्गों की समस्यायें हैं, तो साहित्य में उनकी छाया अवश्य दिखाई देनी चाहिये!"

उमापति जी ने हाथ उठा कर निर्लिप्त भाव से कह दिया—"बेशक! आप वर्गों की समस्यायें साहित्य में दिखाइये परन्तु ऐसा साहित्य कला नहीं होगा, प्रचार होगा। वह स्थायी मूल्य का साहित्य नहीं होगा।"

भुवन विनय से मुस्कराया—"उमापति जी, प्रचार से क्या अभिप्राय है? विचारों की अभिव्यक्ति को ही प्रचार कहा जाये तो सम्पूर्ण उत्कृष्ट साहित्य को प्रचारात्मक मानना होगा।"

उमापति जी के स्वर में कुछ उत्तेजना आ गयी—"कैसे मानना होगा? हाथ कंगन को आरसी क्या! तुम्हारे सामने टैगोर का साहित्य है। उसे प्रचार का साहित्य कह सकते हो?"

शेष लोगों को कुछ सोचते देख कर मुन्नी ने साहस किया—"कवि रवीन्द्र की रचनाओं को पढ़ कर हमें सदा जागृति की, मानव सहृदयता की, दमन के विरोध की प्रेरणा मिलती है।"

उमापति जी ने बड़प्पन से स्वीकार किया—"प्रेरणा मिलनी एक बात है, वही तो साहित्य और कला का गुण है परन्तु स्पष्ट प्रचार, नारेबाजी अथवा प्रचार के प्रयोजन से ही रचना करना—जैसी रचना प्रगतिवादी कवि और लेखक करते हैं, उसको कला और साहित्य नहीं कहा जा सकता।"

भुवन ने उमापति जी से पूछा—"'गोरा' के बारे में, रवि बाबू के दूसरे उपन्यासों के बारे में आपकी क्या राय है? गोरा में उन्होंने वर्णाश्रम की जन्मजात विशिष्टता के निर्मूल अहंकार पर कितना भयंकर प्रहार किया है! उनके अन्य उपन्यासों में भी सामाजिक रूढ़ियों और रूढ़िगत मान्यताओं की व्यर्थता के प्रति संकेत है।"

प्रसाद जी ने विस्मय प्रकट किया—"आप भी क्या बात करते हैं? कहां राजा भोज और कहाँ गंगू तेली! आप आजकल के प्रगतिवादियों की उच्छृ-ङ्खलता की सफाई टैगोर के उदाहरण से देना चाहते हैं?"

"वाह! वाह!" उमापति जी ने प्रसाद जी का उत्साह बढ़ाया।

प्रसाद जी ने और भी कहा—"टैगोर ने कला और साहित्य को प्रचार के स्तर पर कभी नहीं गिराया। उन्होंने अपने साहित्य को कला के स्तर पर सर्वमान्य रखा। गीतांजलि को आप क्या कहेंगे ? उसमें भी आप को प्रचार दिखायी देता है ? वह तो सदा शिव तत्व है।"

भुवन ने होंठों पर हाथ रख लिया परन्तु तप्पी ने उसकी मुस्कान ताड़ ली और बोला—" रहस्यवादी आस्था रखने वालों के लिये ही गीतांजलि में सदा शिव तत्व है। भौतिक प्रमाणों की साक्षी के आधार पर तर्क और चिन्तन करने वाले को उसमें ऊब भी हो सकती है। जीवन की वास्तविकता के स्तर पर देखने वालों को उसमें पलायनवाद दिखायी दे सकता है।"

उमापति जी ने तप्पी को डांट दिया—"अमा, छोटे मुह बड़ी बात। तुम्हें गीतांजलि में पलायनवाद दिखाई देता है, योरुप के लोग बेवकूफ थे जिन्होंने गीतांजलि पर नोबल प्राइज दे दिया ?"

तप्पी ने चुनौती पा गर्दन ऊँची कर ली—"नोबल प्राइज की बात आप जाने दीजिये। इधर जैसी रचनाओं पर नोबल प्राइज मिला है, आप उन्हें स्वयं गुड सेकेंड क्लास कह चुके हैं। योरुप में भी पलायनवादी हैं और जीवन में संघर्ष देख कर वे अपने आप में डुबकी लगा कर शान्ति पाने के विश्वास से मोहित हो सकते हैं।"

प्रसाद जी ने प्रश्न किया—"अपने आप में डुबकी लगाने का क्या मतलब ?"

देव हँसा—"अशास्त्रीय भाषा में अद्वैत और आध्यात्मवाद को क्या कहियेगा?"

तप्पी ने कहा—"हमारे लिये तो रवि बाबू के उसी साहित्य का मूल्य अधिक है जिसने हमें अपना मनुष्यत्व प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। वह वस्तु हमें उनके रहस्यवाद में नहीं, बल्कि उनके सामाजिक और राजनीतिक तत्वों में मिलती है।"

देव फिर बोला—"रवि बाबू की रचनाओं में सामाजिक तत्वों का यद्यपि आज विरोध नहीं होता, परन्तु उन रचनाओं के प्रथम प्रकाशन के समय परम्परावादी लोगों ने उनसे चोट अनुभव की थी।"

"होगा" प्रसाद जी ने असंतोष प्रकट किया, "परन्तु रवि ठाकुर की रचनाओं में वर्ग-संघर्ष और प्रचार तो कहीं नहीं है।"

भुवन ने पूछ लिया—"उस समय देश में वर्ग-संघर्ष की भावना थी ही कहाँ ? रवि बाबू की कविता 'पुरातन भृत्य' देखिये !"

मुन्नी ने भी कहा—"रवि बाबू की सभी रचनाओं में नारी पर सामाजिक अन्याय के प्रति संकेत हैं। उन्होंने परदे के बंधन से मुक्ति, स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह आदि के समर्थन द्वारा नारी को उठाने का यत्न किया है।"

उमापति जी की आँखें अधिक गुलाबी हो गयीं—"रवि बाबू नारी का दमन दूर करने के लिये सहानुभूति प्रकट करते थे। पति के मालिक होने पर आपत्ति नहीं करते थे।"

देव ने देखा—मुन्नी ने मन को घोंटने के लिये घूंट भर लिया था इसलिये उसे बोलना पड़ा—"रवि बाबू के समय की नारी पुरुष से सहृदयता पाकर संतुष्ट हो सकती थी, क्योंकि तब तक समाज उसे रक्षणीया कह कर पाल सकता था। आज समाज, नारी पर समाज को पुरुष के समान ही चलाने का आर्थिक उत्तरदायित्व भी डाल रहा है तो कहानी लेखिका के समाज की नारी पुरुष को सहयोगी न मानकर स्वामी कैसे मान ले ? रवि बाबू ने हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान और मानवीय समता के विकास के जिस पौधे को सींचना आरम्भ किया था, क्या वह तब से और नहीं बढ़ा है ?"

देव को आशा थी कि साहित्य और कला को सामाजिक हित का साधन बनाने में रवि बाबू की नजीर दे देने के बाद उस के तर्क का जवाब नहीं रहेगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

उमापति जी का हाथ उत्तेजना से ऐसे चल गया कि तप्पी यदि बहुत समीप होता तो उसके नाक या होंठों को कुछ क्षति पहुंच सकती थी। वे बोले—"अरे, राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान ही करना है तो 'सर्वोदयी' आन्दोलन चलाइये या अपना 'मार्क्सवाद' चलाइये। बुद्ध, मार्क्स, गांधी और लेनिन की तरह सिद्धांतों के पथ और वाद चलाइये। साहित्य तो रस की वस्तु है, वाद-विवाद और आन्दोलन की वस्तु नहीं ! साम्राज्य और समाजवाद तो आते-जाते रहते हैं। वे इतिहास के चंचल चरण हैं। साहित्य शाश्वत रस है। साहित्य समस्याओं की बात नहीं, समस्या तो किसी के लिये मान्य और किसी के लिये अमान्य होगी परन्तु साहित्य सर्वमान्य होता है।"

तप्पी प्रतिष्ठित साहित्यिक की अधिकार पूर्ण ध्वनि से परास्त नहीं हुआ। उसने पूछ लिया—"आप ऐसे किसी साहित्यिक का उदाहरण तो दीजिये !"

उमापति जी की मुद्रा रौद्र हो गई। आक्रोश से गर्दन तिरछी करके उन्होंने फटकार दिया—"तुम्हे क्या उदाहरण दे, तुमने कुछ पढा भी है ? तुम साइंस वाले साहित्य क्या जानो ? कालिदास को पढ़ो, भवभूति को पढ़ो, तुलसी को पढो। शेक्सपियर, मिल्टन, दाते, गेटे " वे कई नाम लेते चले गये।

"और क्या ! और क्या !" प्रसाद जी ने ऊचे स्वर मे समर्थन किया, "शाश्वत सौन्दर्य ही वास्तविक साहित्य है। सहस्रो वर्ष बीत गये परन्तु उस के रस में क्षीणता नही आयी।"

तप्पी उमापति जी की भवो की उठान से चुटिया गया था। उसने भी गर्दन सीधी कर ली—"कालिदास के ग्रथो मे क्या शाश्वत सौदर्य और रस है ?"

तप्पी की इस उद्दण्डता मे उमापति जी और प्रसाद जी की आखें और होंठ खुले रह गये।

देव ने समाधान के स्वर मे कहा—"कालिदास के काव्य-रस की अमरता से कौन इनकार कर सकता है परन्तु साहित्य की परख पर मन स्थिति और सस्कारो का भी प्रभाव पडता है।"

तप्पी ने कहा—"कालिदास के साहित्य-कौशल और उपमा-चातुर्य से इनकार नही किया जा सकता परन्तु प्रश्न सौन्दर्य और रस का है जो पाठक को अभिभूत कर देता है।"

उमापति जी ने मुस्कराकर हाथ उठा दिया—"अरसिकेषु च काव्य निवेदन सिरसि मालिख, मालिख, मालिख (अरसिको से रस की बात मत कहो, मत कहो, मत कहो)।" वे तप्पी को धराशायी कर देने के संतोष मे ठहाका लगाकर हस पड़े।

भुवन आस्तीनों को ऊपर चढ़ाकर कुर्सी के किनारे पर खिसक आया मानो अखाड़े मे उतरे बिना काम नही चलेगा। उसने मुशी से पूछ लिया—"रघु की दिग्विजय का वर्णन कौन से सर्ग मे है ?"

"चौथे सर्ग मे।" मुशी ने उत्तर दिया।

भुवन ने कहा—"चौथे सर्ग में रघु का दिग्विजय वर्णन पढ़ने से आज के उस पाठक को क्या रस आयेगा जिसने 'युद्ध और शान्ति', 'पेरिस का पतन' आदि उपन्यासों में आधुनिक युद्धों के रोमांचकारी वर्णन पढ़ लिये हों ? इसके अतिरिक्त कालिदास ने जिन युद्धों की स्तुति की है, वे आत्मरक्षा अथवा देश की स्वतंत्रता के लिये नहीं लड़े गये थे। कालिदास ने रघु की बड़ाई की है।

भुवन ने प्रसाद जी की ओर संकेत कर मुन्नी से पूछा—"क्या तुम इनके सामने रघुवंश से अग्निवर्ण के महलों की रंग-रलियां पढ़ कर सुना सकती हो ?"

"नहीं, मैं तो नहीं पढ़ सकती।" मुन्नी ने सकोच से इनकार कर दिया।

प्रसाद जी ने पूछा—"आपको उसमें क्या अश्लीलता लगती है ?"

भुवन बोला—"विकट अश्लीलता तो लगती ही है, उसके साथ ही आधुनिक समाज की रुचि और अभ्यास की दृष्टि से अस्वाभाविक भी लगता है।"

"आखिर क्या अस्वाभाविक लगता है ?" प्रसाद जी ने पूछ लिया।

उत्तर भुवन ने दिया—"अस्वाभिक यह लगता है कि इस युग का विलासी से विलासी और उच्छृङ्खल से उच्छृङ्खल व्यक्ति भी एक कमरे में एक साथ चार स्त्रियों से रमण नहीं कर सकता। कालिदास रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में अग्निवर्ण के विलास-सुख का वर्णन करते हैं कि वह एक ही समय अनेक स्त्रियों से घिर कर रमण करता था। ऐसे रमण की कल्पना में तो शायद लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह ही उत्साह और रस अनुभव कर सकते होंगे।"

"क्यों, रियासतों का विलयन हो जाने से पूर्व हमारे राजे-नवाब क्या करते थे ? उनके हरमों में कितनी रानियां, बेगमें और रखेलें रहती थीं ?" देव ने पूछ लिया।

"हां, राजा लोग ही ऐसा कर सकते थे। यह शृंगार और विलास का सामंती सौन्दर्य और आदर्श था। आधुनिक लोगों को तो यह निर्लज्जता की पराकाष्ठा ही लगेगी। उन्हें इसकी कल्पना से ही पसीना आ जायेगा, मन मिचला जायेगा। उन्हें इसमें रसानुभूति नहीं हो सकती। ऐसी रसानुभूति के लिये ठेठ सामन्ती संस्कारों की आवश्यकता है।"

"यह तुम्हारी प्रगतिवादी आलोचना है।" उमापति जी क्षोभ में बोले, "तुम तथ्यों को विकृत शीशे से देखना चाहते हो। तुम्हें कालिदास में यही मिला, और कुछ नहीं ? तुम्हें शकुन्तला नहीं दिखाई देती ?"

तप्पो उमापति जी के चिढ़ने पर तुल गया था, बोला—"आखिर शकुन्तला में ऐसी क्या बात है ?"

उमापति जी ने अत्यन्त विरक्ति से हाथ हिला दिया परन्तु प्रसाद जी बोल उठे—"आप को शकुन्तला में कुछ नहीं दीखता ? आपके पश्चिम के बड़े से बड़े कवि शकुन्तला की कल्पना पर मोहित हैं। आप साहित्य को समझेंगे क्या ?"

मुन्नी बोल पड़ी—"हमें तो शकुन्तला का व्यवहार न तो स्वाभाविक लगता